संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 41; अंक : 8
नवम्बर, 2008

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति।
भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसि।।

(श्रुति)

भक्ति के द्वारा ही परमात्मा प्राप्त होता है, भक्ति से भगवान के दर्शन होते हैं, भगवान भक्ति के ही वश में हैं।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।

(श्री मद्भगवद् गीता 11/53)

तुम अपने दिव्य नेत्रों से जिस रूप का दर्शन कर रहे हो उसे न तो वेदाध्ययन से, न कठिन तपस्या से, न दान से, न पूजा से ही जाना जा सकता है। कोई इन साधनों के द्वारा मुझे मेरे रूप में नहीं देख सकता। (केवल अनन्य भक्ति के द्वारा ही ईश्वर के रूप को जाना जा सकता है।)

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेऽपि वा।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

बैकुण्ठ में चाहे मैं न रहूँ अथवा योगियों के हृदय में भी मेरा पता न लगे, पर जहाँ मेरे भक्त मेरे गुणों का गान करते हैं, वहाँ तो मैं रहता ही हूँ।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/23)

जिसकी परमात्मा में उत्तम भक्ति है और परमात्मा के समान ही अपने गुरु में भक्ति है, उस महात्मा को सभी पदार्थ स्पष्ट हो जाते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्षः 41 अंक : 8

गजाननं भूतगणादिसेवितं,
कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणं ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं,
नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजं।।

गज के समान मुख वाले, भूतगणों से सेवित, कपित्थ, जम्बू जिसका प्रिय भोजन है, पार्वती पुत्र, शोक विनाशक गणेशजी को मेरा नमन।

नवम्बर 2008

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 8
3. उसके हाथ हजार –आर.बी. श्रीवास्तव 10
4. जगत का सार 'प्रेम' –राजेश कुमार सिंह 11
5. गुरु का बोलबाला –भूपेन्द्र 'अकुश' 12
6. शरद पूर्णिमा की चांदनी/नवरात्री में अभिनन्दन –निर्मला चन्देल 13
7. अर्जुन के विषाद का कारण –जनक कुलश्रेष्ठ 14
8. महिमानं सवाई धाम्नः वर्णने कः क्षमः सुधीः –द्वारका प्रसाद शर्मा 17
9. कर्म संस्कार योग कैसे? –डा. जे.पी. शर्मा 22
10. चलो प्रेम दीपों से घर जगमगाऐं –राजेश कुमार श्रीवास्तव 30
11. गो सेवा –अंशुमान देव मालवीय 31
12. राम की कहानी सार्वभौमिक या सर्वव्यापी चित्त आकर्षित करती है –दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर 33
13. श्री मद्भागवत् माहात्म्य – राजेश कुमार श्रीवास्तव 35

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सिद्धों का शक्तिपात एवं उपाय प्रत्यय

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

इससे पूर्व पिछले दो प्रकरणों में योगियों को अनुभूति-ज्ञान कराने वाले भव प्रत्यय एव उपाय प्रत्यय इन दो प्रमुख कारणों का वर्णन किया गया था। भव प्रत्यय में साधक को जन्म से ही योग-ज्ञान की प्रतीति होने लगती है और उसे पौर्वदेहिकबुद्धि-संयोग मिल जाता है, जिसके फलस्वरूप उसे योग के चमत्कारिक अनुभव हो जाते हैं। यह भव प्रत्यय का परिणाम है। इसके अतिरिक्त-

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

इस सूत्र के अनुसार उपाय प्रत्यय का **अवलम्ब लेने** वाला योगी शनैः-शनैः दृढ़तर अभ्यास करता हुआ कालान्तर में प्रज्ञाविवेक को प्राप्त कर लेता है।

इसके अतिरिक्त एक और महान साधन है जो **पुण्यकर्माजीवों** को पुण्य प्रारब्ध के फलस्वरूप सिद्धों की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ करता है। **यह साधन इस** प्रकार का है जिसे प्राप्त करके मनुष्य अपना जीवन सार्थक कर लेता है। उसका नाम है – **शक्तिपात योग** अथवा **सिद्धयोग**। यह योग मनुष्य को सिद्धानुकम्पा से ही प्राप्त होता है। रही बात यह कि साधक सिद्धयोग का कितना अधिकारी है, वह कब तथा कैसी कृपा प्राप्त करेगा? यह उसकी पात्रता पर निर्भर करता है। वैसे यह साधन इस प्रकार का है जो एक बार प्राप्त हो जाने पर साधक को मोक्ष द्वार तक खींचे ही चला जाता है। जब तक उसकी साधना पूर्ण नहीं हो जाती तब तक उसे बार-बार बुद्धिसंयोग मिलता रहता है। योग शिखोपनिषद् में ऐसा लेख मिलता है:-

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा, धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः।
बिना योगेन देवोऽपि, न मोक्षं लभते प्रिये।।

मनुष्य भले ही ज्ञाननिष्ठ हो, विरक्त हो, धर्मज्ञ हो या जितेन्द्रिय हो किन्तु बिना योग के उसे मुक्ति प्राप्त होती ही नहीं।

आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य पुरुषार्थी बना रहे न कि वह अल्हड़, आलसी बनकर अपने आपको त्यागी घोषित कर दे। जो लोग बाह्योपचारों को त्याग कर अपने आपको त्यागी घोषित करते हैं वे यथार्थ त्यागी नहीं हैं, प्रत्युत् दम्भी हैं। क्योंकि उनकी इन्द्रियाँ और मन कुछ न कुछ हरकतें करते ही रहते हैं। इन लोगों के लिये भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने गीता में

अपने मुखारविन्द से स्पष्ट शब्दों में कहा है:-

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण करके जो लोग मन से विषयों का चिन्तन करते रहते हैं वे लोग दम्भी कहलाते हैं।

अतः मनुष्य को चाहिए कि वह कर्मफल की इच्छा न रखता हुआ सतकर्मों को करता जाये, जिससे उत्तरोत्तर उसकी पुण्यवृद्धि होती रहे। इस विषय में श्रीभगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है -

यज्ञोदानं तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

यज्ञ, दान एवं तप आदि कर्म मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं। अतः ये छोड़ने नहीं चाहिए प्रत्युत् निष्काम भाव से कर्त्तव्य बुद्धि से करते ही रहना चाहिए।

इस प्रकार जो लोग निष्काम कर्मयोग का अभ्यास करते हैं एवं शुभ कर्मों का आचरण करते हैं वे लोग अवश्य ही सिद्धानुग्रह के भाजन हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो लोग अपने मन में वेदान्त की धारणाओं को दृढ़ करते रहते हैं, उनकी पुण्यवृद्धि हो जाने के पश्चात् उन्हें भी सिद्ध संगति प्राप्त हो जाती है। **योगशिखोपनिषद** में कहा गया है-

देहान्ते ज्ञानिभिः पुन्यात्पापाच्च फलमाप्यते।
ईदृशं तु भवेत्तद् मुक्त्वा ज्ञानी पुनर्भवेत्।।
पश्चात् पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।।
ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।।

निष्काम कर्मयोग के अभ्यास से विविध प्रकार के पुण्यों को उपार्जित करता हुआ व्यक्ति उत्कृष्ट पुण्य बढ़ जाने पर अवश्य ही सिद्धसंगति को प्राप्त कर लेता है और फिर सिद्धानुकम्पा से वह योगी बनता है। जब तक मनुष्य सिद्धानुग्रह भाजन नहीं बन जाता तब तक वह मोक्ष के द्वार तक नहीं पहुँच पाता।

हमारे शास्त्रों में सिद्धों की भी दो श्रेणियाँ मानी गई हैं। एक श्रेणी वह है जिसमें योगी दृढ़तर अभ्यास करते-करते सिद्धियों को पा जाते हैं और '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्**' की सामर्थ्य वाले सिद्ध बन जाते हैं। दूसरे सिद्ध वे लोग हैं जो अनादिकाल से ही सिद्ध हैं, जिनकी सिद्धि में कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता। ये लोग **अनादिकालीन महासिद्ध** कहलाते हैं। मनुष्य किसी भी प्रकार के अनुग्रह का भाजन हो, सिद्ध संगति परम आवश्यक है।

हमारा इतिहास यह बतलाता है कि यहाँ के भक्त समुदाय ने येन केन प्रकारेण

सिद्धानुग्रह को प्राप्त करके ही अपने को सफल बनाया। इसलिए साधक के लिए सिद्धानुग्रह की प्राप्ति परम आवश्यक है। चाहे वह अनादि सिद्ध ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि का अनुग्रह भाजन बने या हिमालय के किसी योगिराज की शरण प्राप्त करे। इस प्रकार सिद्धानुग्रह को प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष द्वार की ओर उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है।

कठोपनिषद् में कहा गया है:-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवेष वृणुते तेन लभ्या, तस्यैव आत्मा विवृणुते तनू स्वाम्।।

यह आत्मा न प्रवचन करने से, न बुद्धि कौशल से और न अत्यधिक शास्त्र श्रवण से ही प्राप्त होता है प्रत्युत **"यमेव एष वृणुते तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्"** अर्थात् जिसको यह स्वयं स्वीकार करता है उसी के द्वारा इस आत्म-तत्व की प्राप्ति हुआ करती है। जिसका यह स्वयं वरण कर लेता है उसके शरीर को अपना मन्दिर बना लेता है। स्वयं वरण हो जाने के बाद मनुष्य का मोक्ष अवश्यम्भावी है। जिस साधक का स्वयं वरण हो चुका है उसे इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उसका शरीर परमात्मा का घर हो जाता है, उसमें वह अभेद्य रहा करता है। इन्हीं भावों को गोस्वामी तुलसीदास जी ने निम्नांकित चौपाई में स्पष्ट किया है:-

सोई जाने जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहि ह्वै जाई।।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि सिद्धानुग्रह को प्राप्त कर मनुष्य अवश्य ही कृतार्थ हो जाता है एवं अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। बहुत से लोग इस प्रकार की बातें करते दिखाई देते हैं कि "भाई! यह तो ठीक है कि तुम्हारे यहाँ गुरुदेव की अनुकम्पा से ध्यान लग जाता है, किन्तु कुछ दिन बाद ही उनकी स्थिति जाती रहती है, इस प्रकार के शक्तिपात से क्या लाभ? जिससे दस-पाँच दिन अच्छी-अच्छी अनुभूतियाँ होने के बाद साधक खाली हो बैठे, जो क्षणिक आनन्द दिखाकर शान्त हो जाये।"

इस बात को हम ऊपर समझा चुके हैं कि सिद्धानुग्रह ही वस्तुतः मनुष्य के परम श्रेय का मुख्य साधन है, किन्तु साधक को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि वह अपनी नियमानुवर्तिता में बिल्कुल पक्का रहे। उपाय प्रत्यय में बताये गए सभी नियमों का यथार्थ रूप में पालन करे। इसी प्रकार का आदेश अखिल लोक पावन जगदात्मा श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता में दिया है:-

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

जिसका आहार एवं विहार संयमित है, जो अपनी समस्त चेष्टाओं पर पूरा नियन्त्रण रखता है, जो ठीक समय पर सोता है और ठीक समय पर उठ जाया करता है उसके लिए ही

योग दुःखविनाशक और सुख–समृद्धि का दाता हुआ करता है। अतः सिद्धयोग के प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिये कि वह जगदात्मा द्वारा आदिष्ट उपरोक्त नियम को 'उपाय–प्रत्यय' के अन्तर्गत समझे और उसका पूर्णतया पालन करे। जो मनुष्य नियमानुवर्तिता का पक्का नहीं है, सोने के समय पर सोता नहीं, जागने के समय जागता नहीं, नियत समय पर भोजन नहीं करता तथा जिसकी कोई भी चेष्टा साधना के अनुकूल नहीं है तो समझ लेना चाहिए कि वह परमात्मा की कृपा का बहुत दुरुपयोग कर रहा है और अपने बहुमूल्य समय को व्यर्थ खो रहा है।

श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में भगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है–

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं, पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।

जिस पुण्यकर्मा जीव को अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर जो कि भवसागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ नौका के समान है, सुलभता से मिल जाये और फिर कर्णधार पूज्य गुरुदेव सिद्धयोग के दाता मिल जायें, अनुकूल वायु के रूप में ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त हो जाये फिर भी यदि वह मनुष्य संसार सागर को तरने का प्रयास नहीं करता तो वह एक प्रकार का आत्म–हत्यारा है।

अतः जो लोग स्वस्थ, सुन्दर और सुदृढ़ शरीर वाले हैं, जो सिद्धानुग्रह के रूप में सामर्थ्यवान गुरू की पूर्ण कृपा प्राप्त कर चुके हैं तथा जिन्हें भगवत् कृपा से सभी साधन उपलब्ध हैं फिर भी यदि वे आलसियों की तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो निश्चय ही वे अपने अमूल्य समय को व्यर्थ खो रहे हैं।

उपाय प्रत्यय के अन्तर्गत उन्हीं उपायों का निर्देश किया गया है जिनका अवलम्ब लेना प्रत्येक साधक के लिए निहायत जरूरी है।

ईश्वर के एवं गुरुदेव के परमानुग्रह को प्राप्त करके जो साधक नियमानुवर्तिता का पक्का है, अपने अभ्यास में दृढ़ता से लगा रहता है वह अवश्य ही परम श्रेय को प्राप्त कर लेता है। जो लोग इस प्रकार अभ्यास नहीं करते वे लोग उस महान कृपा को प्राप्त करके भी यथेष्ट लाभ से वंचित रह जाते हैं।

मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है। सिद्धानुग्रह–भाजन एक व्यक्ति एक स्थान पर ध्यान योग का अभ्यास किया करता था। वह जब भी ध्यान में बैठता अनायास ही उसका ध्यान लग जाया करता था और बड़ी–बड़ी दिव्य अनुभूतियाँ जारी हो जाया करती थीं। उसके मन में यह विचार पैदा हुआ कि इस ध्यान योग में कोई विशेष प्रयत्न तो करना नहीं पड़ता, केवलमात्र थोड़ा सा चिन्तन किया और अनुभूतियाँ जारी हो गई। इसमें कोई खास तत्व की बात नहीं है। जब भी हम चाहेंगे ध्यान लगा लेंगे। यह विचार कर उसने अपना

अभ्यास छोड़ दिया। श्री गुरुदेव के अनुग्रह से उसका मन इस प्रकार का अभ्यासी बन गया था कि जब भी वह अभ्यास करता अनुभूतियाँ जारी हो जाया करती। अभ्यास छोड़ने के एक महीने पश्चात उसने पुनः मन को एकाग्र करके देखा तो उसी प्रकार की एकाग्रता हो गई और उसका ध्यान लग गया। इस घटना से उसका यह विश्वास दृढ़ हो गया कि ध्यानाभ्यास में नियमानुवर्तिता का पालन करना जरूरी नहीं है। मैं जब भी अभ्यास में बैठूँगा तभी मुझे ध्यानानुभूतियाँ हो सकती हैं।

यह सोचकर उसने लम्बे समय के लिए अपना ध्यानाभ्यास छोड़ दिया और लौकिक कार्यों में उलझा रहा। परिणामस्वरूप उसकी ध्यानस्थिति जाती रही और वह खाली का खाली रह गया।

यह घटना योग साधकों के लिए एक प्रकार की चेतावनी है। मैं अपने सिद्ध–योग के विद्यार्थियों को यह संकेत कर देना चाहता हूँ कि उनको अपने अभ्यास में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देनी चाहिए। प्रत्युत् उत्तरोत्तर अभ्यास को बढ़ाते ही रहना चाहिए। जिससे गुरुदेव द्वारा किया गया शक्तिपात उनके परम श्रेय का हेतु बन सके। साथ ही भर्तृहरि जी के निम्नांकित श्लोक को बार–बार पढ़ना एवं मनन करना चाहिए:–

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहंयावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

शोक संदेश

भारी अवसाद के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि भगवान गुरुदेव के अनन्य शिष्य टूण्डला निवासी श्री भुवनेन्द्र झा का देहावसान रविवार, दिनांक 19 अक्टूबर 2008 को हो गया है। अपने निवास पर उन्होंने प्रातःकालीन बेला में अन्तिम श्वांस ली। आजीवन गुरुदेव व संवाई आश्रम की सेवा में रत रहने वाले श्री झा जीवन की संध्या के वशीभूत पिछले कुछ समय से रुग्ण रहते थे; किन्तु इस कारण उनकी सेवा भावना व सक्रियता में कोई न्यूनता नहीं आयी थी।

'सिद्धयोग' इस दुःखद घड़ी में शोक संतप्त परिवार को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करने की प्रभु से प्रार्थना करता है। दिवंगत आत्मा को श्री गुरुदेव अपनी अभय गोद प्रदान करें।

– सम्पादक

योग से सदा युक्त कैसे रहें?

आचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

जीव ईश्वर का अभिन्न अंश है। ईश्वर अंशी है।

(ईश्वर अंश जीव अविनाशी) रामचरित मानस में ऐसा आया है।

गीता में भी – **''ममैवांशो जीवलोके जीव भूतः सनातनः''** ऐसा कहा गया है। संसार में दो प्रकार का संबंध होता है। नित्य संबंध तथा अनित्य या संयोग संबंध। जीव और ईश्वर का संबंध नित्य है। सभी जीव उस विराट पुरुष के संकल्प से उन्हीं से प्रकट हुए हैं। जीव, मोह एवं अज्ञानता के कारण अपने संबंध को भूल जाता है। यही भूल या अज्ञान समस्त क्लेशों का मुख्य कारण है। यदि जीव अपने अंशी से अपना संबंध समझ जाये और यह संबंध नित्य बना रहे तो जीव के क्लेष नष्ट हो जायेंगे। अज्ञान, माया एवं लोभ के कारण जीव संसार के विषय वस्तुओं में फँस जाता है और पतन को प्राप्त हो जाता है।

महाभारत के युद्ध के विषम परिस्थितियों में अर्जुन का मन विषाद एवं मोह से युक्त हो गया। ऐसे में – किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति आ गई। भय और शोक से ग्रस्त अर्जुन भगवान से सही दिशा निर्देश की प्रार्थना करते हैं। भगवान को अपना गुरु मानते हुए विनीत भाव से धर्ममय कल्याण के मार्ग का उपदेश देने की प्रार्थना करते हैं।

संसार में मनुष्य की परमात्म–संबंधी दो प्रकार की निष्ठा देखने को मिलती है। कुछ लोग उस परम तत्व को निर्गुण, ब्रह्म, परम–ज्योति आदि के रूप में मानते हैं। दूसरे वह हैं जो ईश्वर को सगुण, साकार मानते हैं तथा अवतारवाद में विश्वास रखते हैं। अपनी निष्ठा के अनुसार ही साधना की मान्यता या पद्धति भी भिन्न–भिन्न हो जाती है। गीता के 12वें अध्याय में भगवान ने दो प्रकार की निष्ठा की बात को स्वीकारा है। उन्होंने यह भी कहा कि दोनों ही प्रकार के साधक अन्ततोगत्वा परमात्मा को ही प्राप्त होते हैं। किंतु दोनों प्रकार की उपासना में थोड़ा अन्तर है। सगुण उपासना की पद्धति के अनुसार भक्त सगुणोपासना में लगा रहता है। सगुण उपासना का प्रथम अंग श्रद्धा व भक्ति है।

भक्ति में सेवा निहित रहती है। भक्ति के साथ ही समर्पण का नाम आता है। परन्तु समर्पण किस चीज का? धन–दौलत का, शरीर का, नाम अथवा पद का? नहीं! समर्पण मन, बुद्धि का होता है। मनुष्य के पास एक ही सुन्दर और पवित्र धन है वह है उसका मन जिसे वह ईश्वर को समर्पित कर दे तो उसकी भक्ति सफल हो जाती है। भक्ति या समर्पण को ही योग दर्शन में **'ईश्वर प्रणिधान'** के नाम से कहा गया है। यही भक्ति का स्वरूप कहा जा सकता है। ईश्वर प्रणिधान से भी समाधि की प्राप्ति होती है ऐसा पतंजलि जी महाराज कहते हैं।

ईश्वर–प्रणिधान– वस्तुत: ध्यान योग का विषय है। मन और बुद्धि को योग की विधि से ईश्वर में समर्पित कर देने पर सगुणोपासना की पराकाष्ठा को प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वर–भाव में प्रतिष्ठित हो जाने पर ऐश्वर्य अपने आप प्रकट हो जाता है। भक्तों के जीवन में इसी प्रकार से भक्ति के बल से योग ऐश्वर्य का प्रादुर्भाव देखा जाता है। भक्ति के बल से ही परमात्मा का ज्ञान होता है। गीता में भगवान श्री कृष्ण चन्द्र कहते हैं– **''भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वत:''** अर्थात् भक्ति के द्वारा मेरा भक्त जानता है कि मैं कौन हूँ और मेरा विस्तार व व्यापकता कितनी है? सगुण की उपासना में भक्त का मन इष्ट देव में लग जाता है और साधक को तत्काल सिद्धि मिल जाती है। इस प्रकार से भक्त और भगवान एक रूपता को प्राप्त हो जाते हैं। गृहस्थ जीवन में जीने वाले लोगों के लिए भक्ति मार्ग ही सरल मार्ग है। इसमें इष्ट का स्मरण सहज ही किया जा सकता है।

ऐसे लोगों के लिए ही **''सुमिर–सुमिर नर उतरहिं पारा''** की बात कही है। सुमिरन करना मन का कार्य है इस कार्य को करते हुए हम शरीर से लौकिक जीवन के कार्यों को भी कर सकते हैं। सगुण उपासना के अन्तर्गत भी ध्यान, धारणा, समाधि का क्रम रहता है। इस क्रम में शरीर को स्थिर व नि: शचेष्ट रखना होता है। इन्द्रियों के समस्त व्यापार बाहरी ना होकर अन्तर्मुख हो जाते हैं। शरीर, मन व प्राण की स्थिरता ध्यान योग का आधार है। ध्यान योग से ही आत्मज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। जो लोग निराकार व निर्गुण ब्रह्म को मानते हैं उनकी उपासना पद्धति भिन्न होती है। भगवान कृष्ण के अनुसार निर्गुण अथवा अव्यक्त की उपासना करने वाले हैं, उनकी साधना में कठिनाई अधिक है क्योंकि मानव स्वभाव से ही **'देहआत्म'** बुद्धि वाला होता है। जो लोग व्यापक सत्ता या आत्म सत्ता को मानते हैं। उन्हें योग युक्त होने के लिए हर वस्तु में आत्म भाव को रखना होता है। आत्मनिष्ठ योगी आत्म मंत्र या हंस मंत्र के उपासक सिद्ध गुरु से इसकी विधि एवं प्रयोग का उपदेश प्राप्त करना चाहिए। आत्म मंत्र अथवा हंस मंत्र का मनन करते हुए योगी नित्य अपने को आत्मनिष्ठ रखकर आत्मतेज से ओतप्रोत रह सकता है। अनात्म वस्तुओं का चिन्तन न बने इसके लिए साधक को कुसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए। ऐसे आत्मनिष्ठ योगियों के लिए भगवान का उपदेश है–

''तस्मात् सर्वेषु कालेषु योग युक्तो भवार्जुन'' अर्थात् हे! अर्जुन सभी कालों में तुम योग से युक्त रहो। इसी अध्याय में सगुण उपासना की पद्धति के अनुसार अर्जुन से कहा– **''तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च''** अर्थात् हे अर्जुन! तुम हर समय मुझे याद रखो और युद्ध भी करो।

इस प्रकार से साधक चाहें सगुण का उपासक हो अथवा निराकार–निर्गुण का लौकिक जीवन जीते हुए भी अपने को योग से युक्त रख सकता है। इसके लिए दृढ़ अभ्यास की आवश्यकता होती है। समय–समय पर अनुष्ठान द्वारा इस प्रकार का अभ्यास किया जा

सकता है। जो अजपा आदि दिव्य मंत्रों का उपदेश प्राप्त कर चुके हैं वे हर समय गुरुमंत्र का जाप करते रहे तो ये योग सफलता ही कही जाएगी। जो सिद्ध गुरुदेव का चित्त में चिन्तन बनाए रखते हैं ऐसे साधक लौकिक कार्यों को करते हुए भी योग युक्त होते है। इसका परिणाम अत्यन्त शुभ ही होगा। योग की उच्चावस्था या निर्बीज समाधि के सिद्धिपन्न होने पर भी योगी अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। तभी योगी को सच्चे अर्थों में आत्मज्ञान में प्रतिष्ठ रहती है। सुमिरन, चिन्तन या सहज योग निर्बीज समाधि के आधार भित्ति के रूप में माने जा सकते है। साधना की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि साधक का मन कितना प्रतिशत एकाग्र है। एकाग्रता के अनुपात पर ही साधना की श्रेष्ठता या न्यूनता मानी जाती है। समाधि की पराकाष्ठा में एक पूर्णरूपेण अपने ध्येय में एकाग्र होकर तदाकार रहता है। इसी से साधक को अभिष्ठ सिद्धि लाभ मिला करता है। OOO

उसके हाथ हजार

भक्तों की विनती को प्रभुजी, करें सदा स्वीकार।
आर्स हृदय की, कभी न जाती, खाली कोई पुकार।।
बालक ध्रुव और प्रहलाद को, जिसने हृदय लगाया है।
वसन हीन हो रही द्रोपदी, उसका चीरबढ़ाया है।।
पपी अजामिल–गणिका तारे, गीधराज कोप्यारकिया।
पहन बनी जो पड़ी राह में, अहिल्या का उद्धार किया।।
उसका सानी, ना कोई जगत में, उसके हाथ हजार।
आर्स हृदय की कभी न जाती, खाली कोई पुकार।।
फूल रहे हो यह जन पाकर, जो है मिट्टी के एक ढेले सा।
भूल गए उन परम पिता को, यह जग लगता इक मेले सा।।
धन–दौलत, ये रि ते–नाते, सब छूट एक दिन जावेंगे।
मुट्ठी बांधे तुम आए जगत में, जब हाथ पसारे जावेंगे।।
फूटी कौड़ी साथ न जावे, चाहे जोड़ो लाख–हजार।
आर्स हृदय की, कभी न जाती, खाली कोई पुकार।।
तन–मन–धन, 'चन्द्रानंद' अर्पण कर दे, है इस जीवन का सार यही।
सच्चे मन से उसका सुमिरन, जाएगा कभी बेकार नहीं।।
मोह माया में फँसे रहे तो, व्यर्थ हीरा जनम गँवाओगे।
मु किल से है जो हाथ लगा, यह अवसर फिरन पाओगे।।
ऐसे हो हम लीन भजन में, फूट पड़े अँसुअन की धार।
आर्स हृदय की, कभी न जाती, खाली कोई पुकार।।
भक्तों की विनती को प्रभुजी, करें सदा स्वीकार।।

● आर.बी. श्रीवास्तव 'चन्द्रानंद'
(ग्वालियर)

जगत का सार 'प्रेम'

राजेश कुमार सिंह, बलिया

व्यावहारिकता में हम देखते हैं लोग राम के स्वरूप को पूजते हैं, उन्हें भगवान कहते हैं, वहीं रावण के स्वरूप से घृणा करते हैं, उसे राक्षस की संज्ञा देते हैं, इसके पीछे कारण क्या है? जवाब भी आपके पास है। दोनों के स्वरूप को आप गौर से देखें आप खुद अनुभव कर सकते हैं। लगता है राम के आंखों से कुछ ऐसी किरणें निकलती हैं जो हमें बुलाती हैं, प्यार देती है उससे जी नहीं भरता, उस स्वरूप से नजर हटाने को जी नहीं करता। वहीं रावण के स्वरूप को लें फिर गौर से देखें, लगता है तिरस्कार कर रहा है। आँखों से निकलने वाली किरणें मन पर आघात पहुंचाती है जैसे वो मार डालने के लिए घूर रही हों।

वैज्ञानिक परीक्षण बताते हैं कि शरीर की सबसे ज्यादा ऊर्जा आँखों के रास्ते नष्ट होती है। **'शरारत आंखें करती है तड़पना दिल को पड़ता है।'** आँखों से निकलने वाली किरणें प्यार और नफरत की भाषा इशारे से बता देती हैं; इसी से हम उक्त व्यक्ति के व्यक्तित्व का आकलन करते हैं। उसके जुबा से निकलने वाली अमृतमय वाणी या कटु वचन का हम आभास कर लेते हैं। जो लोक व्यवहार में कमाल होते हैं वो वार्तालाप में भी विलक्षण होते हैं, उनके बातचीत में आकर्षण होता है, मन में घाव नहीं करता। वार्तालाप भी एक कला है। जीवन के सफर में जितने भी कलाओं का हम प्रयोग करते हैं उसमें इस कला का महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन में इसका महत्वपूर्ण योगदान होता है; इसकी श्रेष्ठता सभी कार्यों को सिद्ध होने का मूल मंत्र है। मधुर, आनन्दमय वार्तालाप वही कर सकता है जो अंदर से मधुर हो, निष्छल हो, जिसके अंदर अपने तो क्या गैरों को भी अपना लेने की क्षमता हो।

मैं खुद उतना सरल नहीं हूँ, मगर ऐसे व्यक्तियों से मिलने का सुअवसर मिलता रहता है जो बोलते तो कम है लेकिन उनके एक–एक शब्द हमारे मस्तिष्क के लिए संजीवनी होती है। उनकी बातों से हमारी शक्तियां कई गुनी बढ़ जाती है। वे प्रेरणादायक, अर्थपूर्ण तथा भावपूर्ण होते है। वे अपने नवीन विचारों तथा भावों को समय–समय पर व्यक्त करते रहते हैं। जिस तरह शादी में दुल्हे व दुल्हन को अच्छी तरह से सजाते हैं ,उसी तरह से वे अपने विचारों तथा भावों को सुन्दर, आकर्षक बनाकर शब्दों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। विचारों के धनी बनने के लिए सबसे अच्छा तरीका यही है कि आप ऐसे समाज में जाए जो सभ्य हो, जिसके सभी सदस्य सुसंस्कृत हों। अपने को अकेले रखकर आप कभी भी भाव व्यक्त करने में धनी नहीं हो सकते। वैसे तो प्रभु (सद्गुरु सत्ता) चेतन क्या जड़ से भी सब कुछ करवा लेते हैं, लेकिन व्यवहारिकता में मेरी समझ से यही होता है। लेकिन प्रभु जी भी भाव और प्रेम को ही पसन्द करते है। रसखान कवि का काव्य प्रेम के मूल्य को चिन्हित करता है–

हरि के सब आधीन है, हरि प्रेम आधीन।
याही ते हरि आपहूं, याहि बड़ापन दीन।।

हमारा धर्म इतिहास साक्षी है कि भगवान भी भक्त के वशीभूत होकर नियम बदल देते हैं। भगवान को भक्त के प्रेम के माध्यम से वश में कर लेता है। मधुर वचन के सिवाय और कोई साधन नहीं जिसके द्वारा हम दूसरों को आसानी से प्रभावित कर दें, प्रमुखतः उन लोगों को जिनसे हमारा परिचय नहीं है। वार्तालाप पटु होना भी मधुरता के साथ–साथ आव यक है। किसी भी व्यक्ति के ध्यान को अपनी तरफ स्वाभाविक आकृष्ट करना एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसे हम यूं भी कह सकते हैं कि जितनी भी उपलब्धियां हैं उनमें इनका स्थान सबसें ऊँचा है। मधुर वचन, प्रेम के बगैर शत्रु मित्र क्या बनेगें, मित्र भी शत्रु बनते नजर आते हैं। किसी के साथ निकटता का अद्‌भुत द्वार खोलना हो तो, प्रेम से निष्छल होकर मधुर वाणी का प्रयोग करें। इस कला से प्रत्येक प्रकार के संगति में अपने व्यक्तित्व का छाप लग जाती है। इसमें निर्धनता आड़े नहीं आती। मनुष्य ऊँची सभा समाज में आदर पाता है। आपके मुख से निकली हुई बातों से ही आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि आप किस तरह के समाज में रहते हैं या संस्कार पाये हैं। आपके बातों से जग को आपका मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है। बुजुर्गों का कथन है– 'सरल, स्पष्ट, मधुर, आकर्षक भाषा से मनुष्य क्या देव भी वशीभूत हो जाते हैं। इसलिए **प्रेम से पगी मीठी बोली बोलो।**

ooo

गुरु का बोलबाला

भूपेन्द्र 'अंकुश'
जलेसर

जहाँ–जहाँ नजरें दौड़ाएं
वहाँ–वहाँ तक पायें, गुरु का बोल बाला
ओ मेरे साथियों, हस्ती निराली गुरुदेव की
कोई न समझा अब तक बोले समाधी महादेव की
डमरू, नाग, गंगधा रायें;
बोले मृगछालायें गुरु का बोल बाला ।। 1।।
ओ मेरे भाईयों सबसे गुरु ही सिरमौर।
अपना हितैषी जग में गुरु के सिवा न कोई और है
दादू, पलटू, नानक लायें
कविश खोल बतायें गुरु का बोल बाला ।। 2।।
ओ मेरे सहगामियों पढ़ लो किताबी पन्ना खोल है
गुरु का वचन ही अमृत गुरु का वचन ही अनमोल है
मदालसा, गार्गी मातायें
सहजो, मीरा गायें गुरु का बोल बाला ।। 3।।
ओ ज्ञान पंथियों गुरु की महत्ता सत्ता जान लो
भयभीत रहता गुरु से काल सा फिट ना इतना जान लो
गुरु 'अंकुश' से नई रचनायें
दूर–दूर सुनवायें गुरु का बोल बाला ।। 4।।

शरद पूर्णिमा की चान्दनी

निर्मला चन्देल

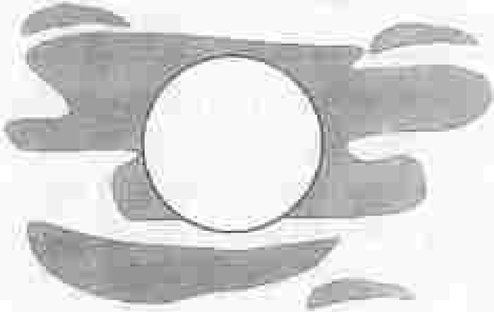

सूने में सौंपू गई, अपनापन चांदनी
देह भर, उजाले का आश्वासन चांदनी
गंधाधिये गहराई
रंग लिये लहराई
साझ केसरोवर में श्वेतासन चांदनी
सूने मे सौंप गई, अपनापन चांदनी
रूप की तिजोरी सी
गुम–सुम सी गोरी सी
द्वार–द्वार रोप गई चन्दनवन चांदनी
सूने मे सौंप गई अपनपन चांदनी
संवलाई आन लिये
शरदीली गूंज लिये
स्वादभर लुटाती है सौंधापन चांदनी
सूने में सौंप गई अपनापन चांदनी
तरल हुई बहती है,
प्रीत गरल सहती है
सुधियों केसिरहाने, मौन मगन चांदनी
सूने में सौंप गई अपनापन चान्दनी
आँखों में झरने भर
सांसों में अमृत भर
दूधिया बनाती है नील गगन चांदनी
सूने मे सौंप गई अपनापन चान्दनी
निर्मल बना इर्ग अपनपन–चांनदी
सूने में सौंप गई अपनापन चांदनी

'नवरात्री में' अभिनन्दन

'अनन्त श्री' का वन्दन करें हम
क्षण–क्षण चलते रहें हम,
प्रेषित स्थानों का ध्यान धरें हम,
हृदय से आराधना करें हम,
कंठों से कोटि–कोटि वन्दना करें हम,
प्रार्थना के मधुर क्षणों में ,
पुष्पाजंलि अर्पित करें हम,
नवरात्री के शुभ अवसरों पर हम,
एकता की साधना से,
स्नेह प्राणों में समाकर ,
रज चरणों का वन्दन करें हम,
एक स्वर से एक लय से,
निर्मल अभिनन्दन करें हम,
पुनीत अभिनन्दन करें हम,
सादर वन्दन करें हम।

अर्जुन के विषाद का कारण

जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर

जगत में दो पक्ष होते हैं। एक वह पक्ष जो अपने राष्ट्र का विस्तार करता है। वह अपनी सम्पत्ति का विस्तार हत्या, लूट, स्त्री अपहरण, अग्निदाह आदि जैसे जघन्य पाप करके करता है। इस कारण उसे सदा अपने शत्रु के प्रबल हो जाने का भय बना रहता है। उसे चिंता रहती है कि यदि उसका शत्रु प्रबल हो गया तो उसके अन्याय से विस्तारित राज्य को वह छीन लेगा। ऐसे व्यक्ति को धृतराष्ट्र कहते हैं अर्थात् धृत+राष्ट्र – जो दूसरों के राष्ट्रों को बलात छीन लेता है।

इसके विपरित वे लोग होते हैं जिनका राष्ट्र छीन लिया जाता है। ऐसे व्यक्ति सदा निश्चिंत रहते हैं। क्योंकि उनके पास धन ही नहीं है, जिसके रख–रखाव की चिंता उनको करनी हो। इनको हृतराष्ट्रवादी कहते हैं।

महाभारत युद्ध के पूर्व ये ही दो पक्ष थे। एक पक्ष में हस्तिनापुर का राजा धृतराष्ट्र था और दूसरे पक्ष में खाण्डव वन (इन्द्रप्रस्थ) का राजा युधिष्ठिर था धृतराष्ट्र के पुत्र संख्या में सौ थे, जिनको कौरव कहा गया। युधिष्ठिर तथा उनके भाई संख्या में मात्र पांच थे। पाण्डु पुत्र होने के नाते पाण्डव कहलाये। यद्यपि धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों भाई राजा कुरु की संतान होने से दोनों ही पक्ष कौरव थे। कौरव आततायी तथा अत्याचारी थे। पाण्डव धर्मानुचारी थे। धर्म की रक्षा के लिए ही उन्होंने अपने आपको विपत्तियों में डालकर 13 वर्षों तक वनवासी के रूप में व्यतीत किया।

पाण्डव यद्यपि संख्या में कम थे तथा उनका सैन्य बल भी कौरवों की अपेक्षा कम था, फिर भी धृतराष्ट्र को सदा चिन्ता बनी रहती थी कि यदि युद्ध हुआ तो पाण्डवों के द्वारा मेरे सारे पुत्र मारे जायेंगे। क्योंकि उसे ज्ञात था कि उसके पुत्र आततायी हैं। उन्होंने पाण्डवों को नष्ट करने के लिए अनेक उपाय किए थे, फिर भी वे बचते रहे। इसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र यह भी जानता था कि पाण्डव देवताओं के वरदानों से उत्पन्न हुए हैं। युधिष्ठिर धर्मराज, भीम वायुदेवता, अर्जुन इन्द्रदेवता और नकुल–सहदेव अश्विनी कुमारों के पुत्र थे। यदि युद्ध हुआ तो उपरोक्त देवता उनकी सहायता अवश्य करेंगे। वैसे भी पाण्डव कौरवों की अपेक्षा बलवान हैं। उदाहरणार्थ गंधर्व चित्रसेन के युद्ध में गंधर्वों के द्वारा दुर्योधन को बन्दी बनाए जाने पर पाण्डवों ने ही दुर्योधन को गंधर्वों के चंगुल से मुक्त कराया था। विराट राजा के युद्ध में केवल अकेले अर्जुन ने ही कौरवों की सारी सेना को पलायन करने को विवश कर दिया था। उपरोक्त कारणों से धृतराष्ट्र युद्ध को किसी भी प्रकार से रोकना चाहता था। यही उसकी चिन्ता थी। जिसके पास पाशविक बल अधिक होता है, वह धृतराष्ट्र अन्धा भी होता है। वह

अधिक धन, सम्पत्ति और बल के कारण अन्धा हुआ करता है। उसे पाकर वह न्याय–अन्याय कुछ भी नहीं देखता है। भले ही वह स्थूल शरीर से अन्धा न हो, फिर भी मदान्ध होता है। उस अन्धे के अनुयायी भी अन्धे होते हैं। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी ने भी अपनी आँखों पर पट्टी बांध रखी थी। वह चाहती हुई भी अपने अन्धे पति की पतिव्रता स्त्री होने के कारण विरोध नहीं करती थी। यदि वह तनिक भी विरोध करती और अपने पुत्र दुर्योधन को डाटती तो कौरवों का विनाश कदापि नहीं होता। अन्धे धृतराष्ट्र के अधिकांश पुत्रों का नाम 'दु' से प्रारम्भ होता है। जो दुष्टता का प्रतीक है। जैसे दुर्योधन, दुःशासन, दुस्सह, दुश्शल, दुर्मर्षण, दुष्कर्ण, दुर्विगाह, दुर्विरोचन, दुराधन आदि तथा बहिन दुःशाला। इस कारण उसके पुत्र भी मदान्ध थे।

धृतराष्ट्र को अपने राष्ट्र की रक्षा तथा अपने पुत्रों की चिन्ता थी। इसी भय के निवारण के लिए धृतराष्ट्र ने, युद्ध से पूर्व जब दोनों ओर से युद्ध की तैयारियां हो रही थी, पाण्डवों को युद्ध से विरत होने के लिए अपने मन्त्री संजय को उनके पास इस संदेश के साथ भेजा कि पाण्डव स्वराज्य प्राप्ति की मांग को त्याग दें और युद्ध न करें।

उद्योग पर्व (महाभारत सत्ताइसवां अध्याय)

धृतराष्ट्र के इस आदेश के कारण संजय ने पाण्डव सभा में जाकर कहा– पाण्डुनन्दन! आपकी प्रत्येक चेष्टा सदा धर्म के अनुसार ही होती रही है। आपकी ये धर्मयुक्त चेष्टाएं लोक में विख्यात तो हैं ही, तथा देखने में भी आ रही है। यद्यपि मनुष्य का यह जीवन अनित्य है तथापि इससे महान सुयश की प्राप्ति हो सकती है। पाण्डुनन्दन! आप इस जीवन की अनित्यता पर दृष्टिपात करें और अपनी कीर्ति को नष्ट न होने दें।

> न चेद भागं कुरवोऽन्यत्र युद्धात्।
> प्रपच्छेरंस्तुभ्यमजातशत्रो।।
> भैक्षचर्यामन्धक वृष्णि राज्ये।
> श्रेयो मन्ये न तु युद्धेन राज्यम्।।

अर्थात् हे अजातशत्रो! यदि कौरव युद्ध किए बिना आपको राज्य का भाग न दें, तो भी अन्धक और वृष्णि वंशी क्षत्रियों के राज्यों में भीख मांग कर जीवन निर्वाह कर देना मैं आपके लिए श्रेष्ठ समझता हूँ। परन्तु युद्ध करके राज्य लेना उचित नहीं समझता हूँ।

संजय कहता है कि मनुष्य का यह जीवन बहुत थोड़े समय तक रहने वाला है। इसको क्षीण करने वाले महान दोष इसे प्राप्त होते रहते हैं। आप युद्ध रूपी पाप न कीजिए। वह आपके सुयश के अनुरूप नहीं है। हे पाण्डुनन्दन! आप क्रोध जनित नरक और हर्ष जनित स्वर्ग– इन दोनों लोकों में कभी न जायें। यदि आप लोगों के राज्य के किये चिरस्थायी विद्वेष के रूप में युद्ध रूपी पाप कर्म करना ही है, तब तो मैं यही कहूंगा कि आप बहुत वर्षों तक

दुखमय वनवास का ही कष्ट भोगते रहें। वह वनवास ही आपके किये धर्म रूप होगा। आपकी बुद्धि कभी अधर्म में नहीं लगती है तथा आपने क्रोध में आकर कभी भी पाप कर्म नहीं किया है। जो पाप की जड़ है, उस क्रोध की इच्छा कौन करेगा? आपकी दृष्टि में तो क्षमा ही सबसे श्रेष्ठ वस्तु है। वे भोग ही हैं जिनके लिए शान्तनुनन्दन भीष्म तथा पुत्र सहित आचार्य द्रोण की हत्या की जाये। अतः आप वनवास ग्रहण कीजिए। अपने कुटुम्ब का वध करके देवयान मार्ग से भ्रष्ट न होइए।

अर्जुन के मन पर संजय के उक्त वचन का पूरा प्रभाव पड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है। जिस समय युद्ध में दोनों सेनाएं आमने–सामने युद्ध के लिए तैयार खड़ी थी, उसी समय अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से अपना रथ दोनों सेनाओं के मध्य में खड़ा करने के लिए अनुरोध किया ताकि वह प्रतिपक्षी सेना के उन वीरों को देख सकें जिनसे उसको युद्ध करना है। श्रीकृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में खड़ा कर दिया। तब वह अपने सगे सम्बन्धियों को देखकर कम्पित हो गया। पसीना–पसीना हो गया और कहने लगा कि मुझे राज्य–सुख की लालसा नहीं है। अपने प्राणों का मोह छोड़कर आचार्य, भीष्म पितामह, पुत्रगण, मामा, श्वसुर, पौत्र तथा साले आदि सभी सगे–सम्बन्धी युद्ध के लिए खड़े हैं, उनकी हत्या करने के उपरान्त यदि मुझे पृथ्वी की अपेक्षा स्वर्ग का भी राज्य मिल जाये, तो भी वह मेरे लिए उचित नहीं है। इनकी हत्या करने से तो मुझे पाप ही लगेगा। और कुल क्षय होगा। कुल–क्षय होने से सनातन कुल धर्म नष्ट हो जायेगा। धर्म के नष्ट होने से सारी पृथ्वी पर अधर्म फैल जायेगा। अधर्म बढ़ने से कुल की स्त्रियां दूषित हो जायेंगी। स्त्रियों के दूषित होने से वर्णशंकरों की उत्पत्ति होगी। परिणामतः पितरों को दी जाने वाली पिण्ड, तर्पण आदि क्रियायें समाप्त हो जायेंगी। जिससे हमारे पितरों का पतन हो जायेगा। इसलिए अपने परिवार जनों की हत्या करने की अपेक्षा तो मैं भिक्षुक बनकर अपना जीवन निर्वाह करना ही उचित समझता हूँ। यह कहते हुए अर्जुन पारिवारिक मोह में फंसकर विषाद में डूब गया और युद्ध करने से उपरत हो गया।

OOO

निष्काम कर्म

निष्काम कर्म का आचरण तभी सम्भव है, जब व्यक्ति का दृष्टिकोण परोपकारी हो। निष्काम योगी अपने लिए नहीं; बल्कि दूसरों के लिए जीना चाहते हैं–

'शिवाय लोकस्य जीवन्ति नात्मार्थम्'

प्रकृति इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। सूर्य भी हमारे लिए तपते हैं, वृक्ष परहेतु ही फलते–फूलते हैं, सरिताएं दूसरों के लिए ही बहती हैं और धरती दूसरों के लिए ही सब कुछ सहन करती है।

महिमानं सवांई धाम्नः वर्णने कः क्षमः सुधीः

द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

46

हृषीकेशनगरे प्रभु रामलालः संस्थापयामास निजाश्रमं वै।
अस्त्यत्र शिबिरस्य यतः स स्थित्वा क्लिष्टानि कष्टान्यथरीचकार।।

47

किं किं कृतं करुणया करुणार्णवेन,
कोऽसौ सुधीर्यो गदितुं समर्थः।
कुतो मन्दमूढः कथितुं प्रवृत्तः
कृपावशात् केवलमुत्सहेऽहम्।।

48

असंख्याता गुणास्तत्र, स गुणागार एव हि।
गुणानुगणने क्वाहं, गुणास्कॉस्कान् गृणेमहम्।।

49

अमृतसरे यत्र प्रभुर्वपुष्मान्, भूत्वा कृतस्तत्र महोपदेशान्।
वृन्दावनादि व्रजक्षेत्रमपि प्रभुः स्वयं, चचार चोवास प्रवासकाले।।

50

स्पृष्टोऽपि दृष्टोऽपि वचोभिरेव,
ललाभ यः कोऽपि कृपां कदाचित्।
ये केचिदन्येऽनुगताश्च तस्य,
धन्या बभूवुः सुकृतिनश्च सर्वे।।

51

सान्निध्यमालभ्य प्रभोर्गुरुर्नः, गुरूपदिष्टं तद्वत् प्रकुर्वन्।
अतीव विख्यातिमिह प्रपेदे, नामाकरे श्रीयुत् चन्द्रमोहनः।।

52

स सिद्धयोगी परमेश्वरो नः, प्रभोः कृपायाः प्रतिरूप आसीत्।
तस्मा अपश्यन् वयमत्र सर्वे, श्रद्धा गुरौ तावती स्याद्यथेश्वरे।।

53

यज्ज्योतिषा ज्योतिरिवाविरासीत्, पञ्चोर्ध्वचत्वारिंशदप्यूर्ध्वएकोनविंशति विक्रमाब्दे। (1945)
तज्ज्योतिषिज्योतिरगमत्तुलीनतां, पञ्चनवत्युत्तरैकानविंशतिके हि सम्वतो।। (1995)

54

सूक्ष्मत्वमापन्न एव स प्रभुः श्रृणोति नः पश्यति चानुकम्पते।
किमस्ति कार्यं गुरुयोगिनामिह, यस्त्वप्रभवः प्रभवेत् कदाचित्।।

55

सत्तास्ति तेषां सकलेषु त्रिषु, कालेषु सर्वत्र विराजमाना।
कुर्वन्ति यं ते मनसा स्वकीयं, किं नैव ते ददति वरदा वरदानरूपे।।

56

अस्मत्कृते स वरदानरूपे, प्रादात् स्वयं सद्गुरुदेव एव।
श्री देवीरामस्य कुलावतंसः, नाम्ना स्वयं श्रीमत् चन्द्रमोहनः।।

57

बाल्यात्प्रभृतिरेव विराग युक्तः, श्रीकृष्णपादाब्जप्रतीतिरासीत्।
तद्दर्शनञ्चापिचकार सर्वतः, इत्थं प्रभुरनिष्ठ अभूत् स सद्गुरुः।।

58

पितुः सकाशात् प्रथमं तुलब्धा, संस्कारराशीरतिनिर्मला या।
तयैव तस्यारवद् दृढ़ामतिः, श्रीकृष्णचरणाम्बुजयोरतीव।।

59

स बाल्यकालेऽपि चंचलत्वं, दधार नो स्वस्य सुभाव-वशतः।
सदा कृष्ण ध्यानान्मननात्तथा च, मनस्तस्यजातं प्रभुपादषट्पदः।।

60

पितुः प्रेरणात् स गतः क्वचिज्च, विद्यालयेषु विद्याध्ययनाय यावत्।
तत्रापि तस्यारवदेक निष्ठा, श्री कृष्णचरणाम्बुजयोः प्रतीतिः।।

61

अस्मद् गुरुणा महनीयवर्चसा, श्रद्धा हित सा व्रजक्षेत्रमानयत्।
तत्र शरीरं तपसा ततापं सः, मग्नः सदा कृष्णपदारविन्दयोः।।

62

यथोपदिष्टोगुरुणा स्वयं सः, चकार सर्व नियमानुगः सदा।
न लेशमात्रं व्यचलत् स्व नियमात्, इत्थं स्वचर्या स चकार सर्वशः।।

63

योगेश्वरात् कृष्णरूपात् स्वयं सः ध्यात्वा स्वयं योगमयं वपुः सः।
दधार रूपं स्वतः एव तस्य, योगाग्निना स्वर्णनिभं वपुर्धृतम्।।

64

साक्षात् शिवः सः समभूत् स्वसंयमात्,
निरन्तरं दीर्घत योगिरूपैः।
किं किं कृतं योगमयेन यष्टिना,
स एव जानाति न च वेत्ति कोऽपि तत्॥

65

आस्ते कुतश्चापि समग्रभक्तिः,
यथेश्वरे स्याच्च गुरौ स्वके तथा।
किं तत्र लभ्यं स विशेषमस्ति,
प्राप्तं समस्तं भवतीति विद्गाः॥

66

यदा न किंचिदवशेषितं स्यात्,
सर्वं सुदृष्टं च करामलकवत्।
तदा स योगी स्वयमेव सद्गुरुः,
स्येनैव भ्राजा भवतीह योगिराट्॥

67

अस्मद् गुरुणां कृपयैव सिद्धं,
लेभे च विख्यातिमथ "टाट बाबा"।
शिष्यः स प्रथमो य सिद्धिसाक्षरः,
प्रणीतवानाश्रममेक नगरे॥

68

कदाचिदासीन्नगरं "फिरोजाबाद"
नाम्ना स्वयं "टाट–बाबेति" ख्यातः।
ससिद्धिमाप्नोति श्रवणादि–दूरात्,
कृपाऽसीद् गुरोरेव तदीयपक्षे॥

69

अन्ये च शिष्या बहवो हि सन्ति श्रीसद्गुरोःसन्निधितः कृतार्थाः।
त एव पारङ्गतवन्त उत्थिताः गुरुपदिष्टाध्वनि ये च चेलुः॥

70

अस्मद् गुरुणां बहु संख्याशिष्याः ये लेभिरे श्रेष्ठस्थिति हि योगे।
अज्ञातरूपेण वसन्त एव, इतस्ततो लोचनगोचरास्ते॥

71

तीर्थीकृतानि गुरुणा बहुसंख्यकानि,
स्थानानि विधिानि च तानि तानि।
गतो गुरोर्यत्र चतश्च पादौ,
संस्पृश्य संस्पृश्य च बभूवरुत्थिता ।।

72

अमृतसर यत्र गुरोर्गुरुकिणा, बभूव स्थान प्रभुजन्मपावितम्
अनेकसंस्कार युवास्तु शिष्या: गुरोः सुकीर्ति प्रथयन्ति सर्वश: ।।

73

अस्माद् गुरुणा च बभूव यो गुरु:,
अध्यापयामास स च वेदसारान्।
वेदान्त विद् डा॰ विश्वबन्धु:,
मज्जनपदेऽपि चरणौ न्यदधत् च मद् गुरु ।।
(होशियारपुरम्-जनपदमस्माकम्)

74

वेदेषु शिष्ठास: अतो हि तेन,
वेदेष्वनुसशोधमधायि तत्र।
संस्थाप्य संस्था यशसा विरेजे
श्रिया पद्मना (पद्मश्री:) चापि विभूति भूषित् ।।

75

पञ्चाम्बुप्रान्तमतिरिच्य नो गुरु:, हरियाणत उत्तरप्रान्तमेव च।
स्व योगमार्गस्य प्रचारहेतवे, बहूञ्जनपदान् स्वीयपदैरभूषयत् ।।

76

बिहार राज्ये गुरुराविवेश, बहूनि स्थानानि व्यतानि तेन।
कोलकाते नगर्या प्रभुराजगाम, का का दिशा नो शुशुभे च नो गुरु: ।।

77

मध्यप्रदेशे बहुजनपदेषु अस्मद् गुरुणां चरणागता: स्म।
दिल्ली नगर्यामपि सत्प्रचार:, कृतो नैकवार स्वयमेव गत्वा ।।

78

"न्यू देलही" यत्र विनिर्मितोऽस्ति,
एकाश्रमो यत्र गुरोर्गुरुणाम्।

चित्रं गुरोस्तत्र विराजतेतराम्
सपर्यया यं प्रणमन्ति शिष्याः ।।

79

कृतानि तीर्थानिचतानि तानि, स्थानानि यत्र जग्मुर्गुरुपादपद्माः ।
माघस्य मासे प्रतिवर्षमायात्, शिष्यैः स्वकैः श्रीचरणाः प्रयागे ।।

80

लक्ष्मण पुरेऽपि चरणाः प्रतिवर्षमागताः ।
मासे गते माघशिविरेसमाप्तौ ।
जना मादृशाः श्री चरणारविन्दयोः ।
स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा कृतकृत्यजाताः ।।

81

लक्ष्मणपुरस्य नगरे हि समागतानां, शिष्यत्वदीक्षामलभम् समार्यः ।
तेषां गुरुत्वो गुरुता महत्ता, सदीक्षकोऽहं गुरुभाव हीनः ।।

82

आज्ञा गुरोर्नैवमया प्रपूरिता, यथोपदिष्टा न च तादृशी कृता ।
कथं ततो मे सुफलस्य इप्सिता, तथापि या कापि कृपा तदर्पिता ।।

83

नूनं न न्यून कथनीयता तत्, पूर्वं सदा दृष्टिपात करोम्यहम् ।
यद्यन्मयालब्धमनर्हं आसम्, अनर्हमर्हं स गुरुः करोति ।।

84

एषा ममैवास्ति हि मन्दगतिता, नास्तीह किंचिदपिविस्मया वहम् ।
ये आश्रिताः स्म परमैकनिष्ठया, त एव शिष्याः परिकल्पनीयाः ।।

85

गुरावेव श्रद्धा फलिता हि दृष्टा,
पदे पदे चैव मयानुभूता ।
कथं विस्मरेम्, गुरोस्त्वपारा,
का का कृपा कारिता नैव भवता ।।

86

ये येऽपि चान्ये खलुभाग्यवन्तः, अवापुरस्यान्तिकसन्निनधिंच ।
सर्वेऽपि ते युक्ततमास्तथा च, श्रेष्ठाश्च श्रेयः पथिका बभूवुः ।।

(क्रमशः)

कर्म संस्कार भोग कैसे?

डा. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब (हिमाचल प्रदेश)

ब्रह्माण्ड नायक योगेश्वर राधाबल्लभ श्री कृष्ण जी महाराज ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा है –

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। (गीता 3/5)

नि:सन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता, क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है। इस संसार में सब प्राणी मात्र कर्म करते हैं, बिना कर्म किये कोई रह ही नहीं सकता। हमारे नित्य के कर्म साधारणतः तीन प्रकार के होते हैं। जिन कार्यों के करने से कर्त्ता को सुख आनन्द, खुशी प्राप्त होती है तथा साथ ही दूसरे लोगों के समुदाय, को भी प्रसन्नता तथा आनन्द का भाव उत्पन्न होता है, उन्हें पुण्य या शुभ कर्म कहा जाता है। शुभ कर्म ही सत्कर्म कहलाये जाते हैं। इन कर्मों से प्राणीमात्र का हृदय सहसा ही प्रफुल्लित, आनन्दित हो उठता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे कर्म होते हैं, जो अपने मनोयोग से शीघ्रता में, क्रोध में, लालच में कर दिये जाते हैं। जिनसे स्वयं कर्त्ता को करने के बाद पछताना पड़ता है। तथा दूसरे लोगों को उन कर्मों से दुख, पीड़ा पहुँचा करती है, जो कभी भी हितकर नहीं हुआ करते। ऐसे कर्म पाप या अशुभ कर्म कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कर्म होते हैं, जिन्हें हम पुण्य और पाप से मिश्रित मानते हैं। जैसे किसी ने चोरी से किसान के बगीचे से आम तोड़ कर रास्ते में पड़ने वाले मंदिर में चढ़ा दिये। सट्टे से प्राप्त धन से बन्दरों को खरीदकर खिला दिये। अतः इन परिस्थितियों से बचने के लिए हमें कर्म–रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए तभी हम उनके दुष्प्रभावों से बच सकेंगे। शुभाशुभ कर्मों का प्रभाव हमारी अन्तरात्मा पर पड़ता है। यह प्रभाव कभी तुरन्त या कभी बहुत समय पश्चात् फल रूप में प्रगट होता है। कर्मों से हमें सुख–दुःख मिला करते हैं। अतः सुख–दुःख के आधार पर हम कर्मों को तीन श्रेणियों में विभाजित करते हैं। संचित, प्रारब्ध और क्रियामाण कर्म है। सुख प्राप्त करना तो सभी प्राणी मात्र हर पल चाहता रहता है तथा दुःख की कामना कोई नहीं करता। शुभ कर्म करने से सुख तथा अशुभ कर्मों का फल दुःख देने वाला होता है, इसी लिए कहावत प्रसिद्ध है–

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस, करहिं तेही फल चाखा।।

अतः जो जीव जैसा कार्य करता है, उसका परिणाम भी वैसा ही भोगा करता है। यही कारण है लोग दुखों से डरकर दूर भागा करते हैं। कष्ट दुख में ही होता है।

दुःखों से सभी घबड़ाते हैं। दुःखों से छुटकारा पाना ही प्राणी मात्र की लालसा हर क्षण बनी रहती है। अतः दुःखों का कारण जान लिया जाय और उसका त्याग कर दिया जाये तो दुःख दूर हो जाते हैं। प्रायः दुःख तीन प्रकार के जाने जाते हैं। रामचरित मानस में स्वामी तुलसीदास ने सत्य ही कहा है–

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज्य नही काहुहिं व्यापा।।

अर्थात् दैहिक, दैविक तथा भौतिक तीनो प्रकार के दुःख, श्री राम के राज्य में किसी को नहीं सताते थे।

1. **दैहिक ताप–** शरीर से सम्बन्धित दुःख दैहिक ताप कहे जाते हैं। जैसे जन्म–जात अपङ्गता, अपूर्णता, बधिरता, अन्धता तथा पैतृक रोगों का होना इत्यादि। मृत्यु परान्त हमारा सूक्ष्म शरीर रह जाता है जो नवीन शरीर की रचना तथा जन्म लेने में सहायता करता है। वर्तमान समय में जिस भी शरीर के अंग का दुर्पयोग किया जाता है, वह अंग सूक्ष्म शरीर में बहुत दुर्बल हो जाया करता है तथा पुनः जन्म लेने पर वही अंग विशेष कमजोर विकसित रहेगा तथा परिणामस्वरूप प्राणी में, नपुंसकता, अपंगता, बधिरता, अन्धता आ जायेगी। यह निर्बलता का दण्ड कठोर ही नहीं, वरन उस अंग को सुधारने अथवा आराम या विश्राम देने का उपाय होता है। अतः प्राणी को सचेत रहने की सर्वदा आवश्यकता है। अति सर्वत्र वर्जित का ध्यान रखना चाहिए। कुछ समय तक उस अंग को आराम मिलने से आगे के लिए वह सचेत तथा सुक्ष्म हो जायेगा। शरीर के अन्य अंगों के शरीरिक लाभ के लिये अमर्यादित प्रयोग करने पर, अपव्यय करने पर, पाप सहित उपयोग करने पर, आगे आने वाले जन्मों में वे अंग जन्म से प्रायः कमजोर, अपूर्ण या नष्ट हो जाते हैं। शरीर और मन के पापों के शोधन के लिए ही बच्चों में प्रायः जन्मजात रोग हो जाते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म शरीर का वह निर्बल अंग विश्राम पाकर आगे होने वाले जन्मों के लिए तरोताजा सुडोल तथा पूर्णता प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार शरीर सम्बन्धी ताप दूर होता है।

2. **दैविक ताप–** मन से होने वाले दुखों को दैविक दुःख कहा जाता है। चिन्ता, आशंका, क्रोध, अपमान, हीनता, शत्रुता, भय, शोक, विछोह इत्यादि है। मन के दुःख होने के कारण इन्हे मानसिक ताप भी कह सकते है। जो कर्म स्वेच्छा से तीव्र भावनाओं से प्रेरित होकर किये जाते है। ईर्ष्या, कृतघ्नता, छल, कपट, धोखा, अपमान, दंभ, क्रूरता तथा स्वार्थ परायणता आदि। कुविचारों के कारण अन्तःकरण में प्राणी घुलता रहता है, उससे अन्तःचेतना पर इसी प्रकार प्रभाव पड़ता है जिस प्रकार धुंये के कारण दीवार काली हो जाती है, या तेल से भीगने पर कपड़ा गन्दा हो जाता है। आत्मा स्वभावतः पवित्र होती है। वह अपने ऊपर पापों तथा कुविचारों को जमा हुआ देखना नही चाहती तथा इस चिन्ता में रहा करती है कि किस प्रकार इस गन्दगी को अतिशीघ्र साफ करूं। पेट में हानिकारक वस्तुओं के जमा होने

पर पेट उसे उल्टी–दस्त के रूप में बाहर करता है। उसी तरह आत्मा तीव्र इच्छा से किये गये पापों को बाहर निकालने को आतुर हो जाती है। हमें उसका आभास भी नहीं हो पाता है कि आत्मा भीतर ही भीतर उस किये गये पाप को बाहर निकालने को आतुर तथा व्याकुल है। हमारा अन्तर्मन, अपमान, असफलता, शोक, क्षोभ, दुःख आदि होने के अवसरों को वह कहीं से एक न एक दिन, किसी भी प्रकार, खींच ही लाता है ताकि उन दुर्भावनाओं तथा पाप संस्कारों का, इन अप्रिय परिस्थिति में समाधान हो जाये। चोरी, डकैती, व्यभिचार, अपहरण, हिंसा इत्यादि में मन की प्रमुखता होती है। हत्या करने में हाथ का कोई उद्देश्य सफल नहीं होता बल्कि मन के आदेश के कारण ही हत्या, चोरी, लूट की जाया करती है। अतः ऐसे कार्य जिन्हें करते समय इन्द्रिय सुख न मिलता हो, मानसिक पाप कहे जाते हैं। ऐसे पापों का फल (संस्कार) भी मानसिक दुःख होता है। स्त्री–पुत्र, प्रियजनों की मृत्यु धन नाश, लोक निन्दा, अपमान, पराजय, असफलता, दरिद्रता आदि सब मानसिक दुःख हैं। दुःख इसलिए आते हैं, ताकि आत्मा के ऊपर जमा हुआ प्रारब्ध कर्मों का पाप संस्कार निकल जाये। पीड़ा, दर्द, वेदना उन पूर्वकृत प्रारब्ध कर्मों के निकृष्ट संस्कारों को धोने के लिए प्रकट होती है।

3. भौतिक ताप– जो दुःख वर्तमान में अचानक उपस्थित हो जाये उसे भौतिक–दुःख कहते हैं। एक प्रकार से भौतिक दुःख सामाजिक पापों का परिणाम होते हैं। सम्पूर्ण मानव जाति एक सूत्र में बंधी हुई है तथा विश्वव्यापी जीव तत्व एक है। आत्मा, अजर, अमर सर्वव्यापी है। एक स्थान पर यज्ञ करने से अन्य स्थानों का वायुमण्डल शुद्ध हो जाया करता है उसके विपरीत एक स्थान पर दुर्गन्ध फैलाने से अन्य स्थानों का वातावरण दुर्गन्ध युक्त हो जाता है। इसी तरह एक मनुष्य के दुष्ट कर्मों के लिए दूसरा व्यक्ति भी जिम्मेदार होता है। एक दुष्ट व्यक्ति अपने माता–पिता को तो लज्जित करता ही है, अपने कुटुम्ब, गांव वालों को भी शर्मिन्दा कर देता है। अतिवर्षा, दुर्भिक्ष बाढ़, ओलावृष्टि, महामारी, हैजा, चेचक, आगजनी तथा युद्ध इत्यादि भौतिक ताप की श्रेणी में आते हैं। भौतिक ताप लगभग सामूहिक रूप में आते हैं। भौतिक दुर्घटनायें सृष्टि दोष नहीं होतीं वरन इनका कारण मानव स्वयं होता है। अग्नि में तपाकर स्वर्ण की भांति प्राणी को शुद्ध–पवित्र बनाने हेतु ऐसे कष्ट प्रायः बार–बार आया करते हैं और संसार को सचेत एवं चेतावनी देकर सामाजिक निष्पक्षता, निष्पापता, बढ़ाने का आदेश दिया करते हैं। हमारे कर्मों का परिणाम ही संस्कार रूप में फलित होता है। अर्थात् कर्म फल को संस्कार कहा जाता है। पुण्य कर्मों के शुभ संस्कार होते हैं तथा पाप कर्मों के दुःख दायी संस्कार बन जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि अन्याय करने वाले अमीरों की अपेक्षा भोलाभाला जीवन बिताने वाले लोगों पर दैविक प्रकोप अधिक हुआ करते हैं। अतिवृष्टि, सूखा इत्यादि नुकसान गरीब किसानों को ही उठाना पड़ता है। कहते हैं कि अन्याय करने वाले की अपेक्षा चुपचाप पशुवत अन्याय सहन करने वाला कम पापी नहीं होता। इसीलिए कहा जाता है 'बुजदिल जालिम का बाप होता है'। कायरता अपने आप जुल्म

करने का न्योता होती है। अत: जुल्मों का डटकर सामना करना चाहिए।

प्रश्न उठता है प्राणी अपने जीवन काल में अनेकों प्रकार के कर्म करता है, अत: कर्मों के फल तो उसे अपने जीवन काल में ही मिल जाया करते है तथा कुछ संस्कार रूप में शरीर छोड़ने के बाद आत्मा के साथ शरीर से बाहर हो जाते हैं तथा पुर्नजन्म अथवा जन्म लेने पर संचित संस्कार भी उस शरीर को भुगतने पड़ते हैं। अत: विचारणीय यह है कि संस्कार अगले जन्म में कैसे जाते है?

गरूण पुराण में कथा आती है कि 'यमलोक' में चित्रगुप्त नामक एक देव, जो यमराज का महालेखाकार होता है, हर जीव के भले बुरे कर्मों का विस्त्रित विवरण हर पल का, लिखते रहते है। मृत्यु के बाद प्राणी की आत्मा यमलोक जाती है। वहाँ चित्रगुप्त देव उस प्राणी की आत्मा से साक्षात्कार करते है तथा अपने लेखे से प्राणी को अवगत कराते है। उस प्राणी द्वारा किये गये शुभ या अशुभ, पाप, पुण्य कर्मों के अनुसार ही उसे वहाँ स्वर्ग अथवा नरक में रहने को जगह दी जाती है। पापात्मा सदैव नरक पापी तथा पुण्यात्मा स्वर्गगामी होती है। स्वर्ग में सम्पूर्ण सुख सुविधा, रहन–सहन, खाने–पीने की व्यवस्था इत्यादि उपलब्ध कराई जाती है जब कि नरक वासियों को अनेकों प्रकार की असुविधायें, दु:ख, पीड़ायें भोगनी पड़ती हैं। साधारणत: दृष्टि कोण से चित्रगुप्त का कार्य बड़ा कठिन सा प्रतीत होता है, क्योंकि सृष्टि में चौरासी लाख योनियां है तथा हर योनि में असंख्य आत्मायें हैं, जिनके अनेकों कार्यों का विवरण प्रति–दिन पल–पल लिखना, प्राय असम्भव सा जान पड़ता है, कितना विशाल यमराज का शासन तंत्र होगा। परंतु आधुनिक विज्ञान जगत ने शोध निकाला है कि मनुष्य भले–बुरे कार्यों का विस्तृत विवरण उनका सूक्ष्म चित्रण, अन्त:चेतना में हर पल होता रहता है। ग्रामोफोन तथा कैसेट रिकार्ड में रेखा रूप में, गाने, वाद्ययंत्रों की लय, ताल, घुंघरूओं की आवाजे इत्यादि भी दी जाती हैं। संगीत चल रहा है, नाच हो रहा है, गाना गाया जा रहा है तथा विभिन्न प्रकार के बाजे बज रहे है, इन अनेकों प्रकार की ध्वनियों का विद्युत शक्ति का एक प्रकार का संक्षिप्त एवं सूक्ष्म एकीकरण होता है और वह रिकार्ड में मामूली जगह में रेखाओं की तरह अंकित होता जाता है। इस प्रकार तैयार किया गया रेखाचित्र रिकार्ड कहा जाता है। वह रिकार्ड स्वयंमेव या तुरंत ही नहीं बज उठता बल्कि ग्रामोफोन रिकार्ड सुनने के लिए ग्रामोफोन मशीन को चलाना पड़ता है तब संग्रहीत ध्वनियों को सुनसकते है क्यों ग्रामोफोन की सुई की रगड़ अंकित रेखाओं से मिल जाती है। इसी तरह कैसेट रिकार्ड, कैसेट प्लेयर में लगाकर बिजली के माध्यम से सुने जाते हैं। ठीक उसी भांति भले बुरे कार्यों का विवरण रेखाओं के रूप में अन्त: चेतना के ऊपर होती रहती है तथा मन की भीतरी सतह में जमा हो जाती है। जब रिकार्ड पर सुई का स्पर्श होता है तो उसमें भरे हुए गाने इत्यादि प्रकट होने लगते है, उसी प्रकार संचित कर्म के रूप में जमा हुई रेखायें किसी उपयुक्त अवसर का स्पर्श अथवा आघात होने से प्रकट हो जाती है। भारतीय विद्वानों ने बहुत समय पूर्व ही इन कर्म

रेखाओं की जानकारी प्राप्त कर ली थी तथा कहा था ''कर्म रेख नहि मिटे करो कोई लाखो चतुराई'। इससे ज्ञात होता है कि हमारे मनीषियों को पूरा ज्ञान था कि प्राणी के अन्त मन में संस्कार की अंकित रेखायें होती हैं, जो अपने फल दिये बिना मिटती नहीं है। इसी तरह कहा जाता है कि सिर के अगली मस्तक वाली हड्डी पर कुछ रेखायें ब्रह्म लिख देता है। बच्चा जब जन्म के बाद छः दिन का हो जाता है, तब 'छटी' नामक संस्कार कराया जाता है, कहते है उसी दिन विधि माता बच्चे के सारे संस्कार लिख जाती है, जो सत्य प्रतीत होती है। तभी कहा जाता है 'विधि का लिखा न कोई मेटन हारा' अर्थात् विधि ने जो मस्तक में रेखाओं के रूप में अंकित कर दिया है, उसे मिटाने वाला कोई नहीं है। वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क में भरे हुए ग्रे मेटर, भूरा चर्बीयुक्त पदार्थ का सूक्ष्म दर्शक यंत्रों द्वारा पता किया तो पाया कि वहां के एक-एक परमाणु में असंख्य रेखायें थीं। ये रेखायें कैसे बनती है, उनके बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं मिली। वैज्ञानिकों ने अनेकों मस्तिष्कों के परमाणुओं का गहन अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला कि आलसी, निष्क्रिय एवं विचारशून्य प्राणीयों में यह रेखायें बहुत कम बनती है। जबकि ज्ञानशील, कर्मनिष्ठ एवं वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में इस तरह की रेखायें बहुत बड़ी संख्या में होती है। अतः यह रेखायें शारीरिक और मानसिक कार्यों को संक्षिप्त और सूक्ष्म रूप से लिपिबद्ध करने वाली प्रमाणित हुई। अतः भले-बुरे कार्यों का ग्रे मैटर के परमाणुओं पर यह रेखांकन (शास्त्रीय शब्दों में अन्तः चेतना का संस्कार कहा जा सकता है) पौराणिक 'चित्रगुप्त' की वास्तविकता को सिद्ध करता है। चित्रगुप्त शब्द का संधि-विच्छेद करने पर दो शब्द चित्र तथा गुप्त बनते हैं। चित्रगुप्त का अर्थ है, गुप्त मन, गुप्त चित्र, अन्त चेतना, सूक्ष्म मन, पिछला दिमाग, भीतरी चित्र। इन चित्रों के भावार्थ को ही 'चित्रगुप्त' कहा जाता है, अर्थात् मन के अन्तःकरण में गुप्त चित्र (रेखायें) अंकित होते रहते हैं।

यह चित्रगुप्त हर जीव के हर क्षण के कार्यों को लगातार लिखता रहता है जिसे हम 'विधिना का लेख' कहते हैं। हर प्राणी-जीव का अपना-अपना पृथक-पृथक चित्रगुप्त होता है। अतः ब्रह्माण्ड में जितने जीव हैं, उतने ही चित्रगुप्त हैं। इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि हर प्राणी का लेखन कार्य पल-पल का सविस्तार पूरा हो जाता है। शंका होती है कि यमराज दरबार का चित्रगुप्त तो एक है परंतु प्राणीमात्र के अपने अलग-अलग चित्रगुप्त हैं। यह शंका ज्यादा पेचीदा नहीं है। दिव्य शक्तियां व्यापक होती है तथा प्राण तत्व एक है। उसका अंश हर व्यक्ति में समाये हुए है। आत्मा तथा परमात्मा में व्यक्ति और समष्टि का भेद है, बाकी दोनों एक ही है। हमारी आत्मा, परमात्मा की आत्मा का ही अंश है, ठीक उसी प्रकार जैसे, हमारा प्रतिबिम्ब शीशे में दिखाई देता है, प्रतिबिम्ब का अस्तित्व हमारे शरीर के कारण ही है, अगर हम, शीशे के सामने से दूर हो जायें तो प्रतिबिम्ब नहीं बनेगा। आत्मा-परमात्मा के पदार्थ एक है, जैसे बाग-बगीचे की वायु, गन्दे नाले की वायु आदि स्थान भेद के कारण अनेक नाम वाली होते हुए भी मूलतः विश्व व्यापक वायु तत्त्व एक ही है, वैसे ही अलग-अलग

शरीरों में रहकर अलग–अलग काम करने वाला चित्रगुप्त देवता भी एक ही तत्व है। अतः चित्रगुप्त निरंतर हमारे भले–बुरे कार्यों का विट्ठल सूक्ष्म रेखाओं के रूप में अन्तःमन में जमा होते रहते हैं। इसे विज्ञान की भाषा में **'माइक्रोरिकोर्डिंग इन दी इनर कांसीयस माइण्ड'** कह सकते हैं। आत्मा, शरीर छोड़ते समय इन्द्रिय, मन, बुद्धि को साथ लेकर बाहर निकल जाती है, उसी के साथ प्राणीमात्र के कर्म संस्कार भी चले जाते हैं। अन्तःमन में रेखांकित भाषा ठीक उसी तरह होती है जैसे शार्ट–हैंड की सूक्ष्म रेखायें होती हैं, अतः कर्म रेखाओं को भी सूक्ष्म रेखायें कह सकते हैं।

हमारे मन के दो भाग होते हैं। एक बहिर्मन (आउटर माइण्ड) तथा दूसरा अन्तर्मन (इनर माइण्ड)। बाहरी मन तर्क वितर्क करता है, सोचता है, काट–छांट करता है तथा अपने लक्ष्य बदलता रहता है अथवा स्थिर नहीं रहता है, जबकि अन्तर्मन भोलाभाला होता है, बालक के समान होता है। काट–छांट नहीं करता, दृढ़, स्थिर स्वभाव वाला होता है। श्रद्धा भक्ति, प्रेम, अनुराग वाला होता है। अपितु बाहरी मन शैतान तथा अन्तर्मन भगवान सदृश्य होता है। बाह्यमन प्रयत्नशील रहता है कि अपने ऊपर पाप कर्म की रेखायें अंकित न होने दूं तथा पुण्य कर्मों को बढ़ाचढ़ाकर अंकित करूं जिससे पापों का फल भोगना ही न पड़े तथा पुण्य, फलों का भरपूर आनन्द लूं। जबकि भीतरी मन ऐसा नहीं होता है। वह पूर्ण सत्यनिष्ठ न्यायाधीश की भांति कार्य करता है। किसी प्रकार लोभ, लालच, स्वार्थ, भय उसे प्रभावित नहीं कर सकता। इसी कारण कहा जाता है कि मनुष्य के अन्दर एक ईश्वरी शक्ति होती है तथा दूसरी शैतानी। अतः गुप्त मन को ईश्वरी शक्ति तथा बाहरी मन को शैतानी शक्ति कहा जाता है। अतः इस ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न गुप्त मन को ही चित्रगुप्त कहा जाता है जिसे इतना महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया है तथा प्राणी के पल–पल का लेखा जोखा गुप्त रूप से अंकित करता रहता है। चित्रगुप्त एक खुफिया जासूस की तरह कार्य किया करता है तथा भले–बुरे कार्य अपनी अन्तःचेतना (डायरी) में लिखता रहता है। अन्तर्मन की दुनिया में चित्रगुप्त या गुप्तचित्र पुलिस तथा अदालत दोनों का काम करता है, परन्तु बाहरी दुनियां में तो अगर पुलिस झूठा सबूत दे दे तो अदालत का फैसला गलत हो सकता है। परन्तु भीतरी दुनियां में ऐसी गड़बड़ी नहीं हुआ करती। अन्तःकरण स्पष्ट रूप से सब कुछ भलीभांति जानता है कि कर्म, किस प्रकार, किस इच्छा से, किस परिस्थिति में, किस विचार से, किया गया था। वहां बाहरी मन को सफाई अथवा ब्यान देने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि गुप्तमन उस कर्म के सम्बंध में पूरी जानकारी रखता है। अतः पाप या पुण्य कर्म की भावना से ही कर्म की नाप की जाती है। बाहरी दुनियां में भौतिक वस्तुओं की नापतोल की जाती है। दान की नाप भी रुपयों, धन–दौलत की मात्रा से करते हैं, परंतु चित्रगुप्त की नाप–तोल, केवल मन की भावना से ही की जाती है। भौतिक चकाचौंध से कदापि नहीं। भगवान कृष्ण के आदेश पर अर्जुन ने महाभारत के युद्ध में लाखों लोगों को मार डाला, यहां तक कि कुरुक्षेत्र की

मिट्टी लाल हो गई, खून की नदी बहने लगी फिर भी अर्जुन को पाप नहीं लगा क्योंकि अर्जुन का उद्देश्य पवित्र था वह पाप को नष्ट करके धर्म की स्थापना करना चाहते थे। अतः अर्जुन के अन्तर्मन (खुफिया रजिस्टर) में यही भावना अंकित हो गई तथा लोगों के मारे जाने की संख्या का हिसाब नही लिखा गया। आप बेशक करोड़पति हैं, अगर आपका दिल खोटा है, तो चित्रगुप्त के दरबार में आप भिखारी ही गिने जायेंगे। उसी तरह अगर भिखारी, दिल का धनी है, दानशील, दया, भाव रखता है तो उसे बादशाह गिना जायेगा। चित्रगुप्त की शासन प्राणाली में भावना को ही स्थान मिला करता है। हमारे प्राणों के साथ घुल मिलकर रहने वाला चित्रगुप्त देवता, हमारे भले-बुरे कार्यों का लेखा-जोखा अन्त:चेतना के परमाणुओं पर लिखा करता है, उस अदृश्य लिपि को आम बोल-चाल की भाषा में 'कर्म रेखा' कहते हैं। पाप-पुण्य का निर्णय भी मन की इच्छा और भावना से करते हैं। चित्रगुप्त के यहां अलग-अलग व्यक्ति के लिए पृथक-पृथक कानून व्यवस्था है। जैसे-एक चपरासी ने, क्लर्क ने तथा एक मजिस्ट्रेट ने किसी से रिश्वत प्राप्त की, अतः इन तीनों को एक सी सजा न देकर, उन्हें अलग-अलग सजा मिलेगी। हो सकता है, चपरासी को छोड़ दिया जाये, क्लर्क को आर्थिक दण्ड देना पड़े, परंतु मजिस्ट्रेट को सेवा से ही निकाल दिया जायेगा। क्योंकि तीनों के उत्तरदायित्व के अनुसार ही दंडित किया जायेगा, बेशक रिश्वत तीनों की एक सी है। यही भावना चित्रगुप्त के यहाँ देखी जाती है। उसी तरह एक शिकारी जानवर मारकर अपनी रोजी चलाता है, अपराध उसका हिंसा करने का बनता है, परंतु यदि ज्ञानी पंडित अगर मांस भक्षण करता है, तो दूसरों को अहिंसा का पाठ पढ़ाता है। अपराध दोनों का एक सा ही होता है, परंतु ज्ञानी पंडित को सजा, शिकारी की तुलना में अधिक मिलनी चाहिए, क्योंकि ज्ञानी होते हुए अपराध कर रहा है, अतः पाप, पंडित को ज्यादा लगेगा। गन्दे कपड़े पर थोड़ी सी रेत उड़कर पड़ जाये तो उसका कोई विशेष प्रभाव कपड़े पर पड़ जाये, तो कपड़ो पर धब्बे साफ दिखाई देते हैं। इसी तरह असभ्य, अनपढ़, अज्ञानी मनुष्य को कम पाप लगते हैं क्योंकि ज्ञान बुद्धि के साथ-साथ सत, असत, कर्म, अकर्म तथा कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विवेक अधिक होता है। गीता मे कहा गया है-

किं कर्म किकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।। (4/6)

अर्थात् कर्म-अकर्म क्या है-इस प्रकार निर्णय करने में बुद्धिमान मनुष्य भी मोहित हो जाते है। इसलिए वह कर्म तत्व में तुझे समझाकर भलीभांति कहूंगा, जिसे जानकर तू अशुभ से अर्थात् कर्म बन्धन से मुक्त हो जायेगा। अतः ज्ञानी पुरुष, विचारवान, भावना शील हृदय वाले जब अपराध करते हैं तो चित्रगुप्त उनके मामले में अपराधों को भी 'महापाप' की श्रेणी में रेखांकित कर देते हैं जबकि अज्ञानी प्राणी का अपराध उससे नीचे वाली श्रेणी में गिना जाता है। प्रजा की अपेक्षा राजा का अपराध महापाप कहलाता है क्योंकि राजा, सक्षम,

ज्ञानवान, पुरुषार्थी होता है।

प्रिय साधको कृपया ध्यान देकर समझने की कोशिश करें कि चित्रगुप्त तो हर प्राणी का अलग–अलग उसी तरह कार्य करता है। जिस प्रकार कम्प्यूटर नेट वर्किंग में 'सी.पी.यू.' (सेंटर प्रोसेसिंग यूनिट), 'ब्ल्यू टूथ' या 'पैनड्राइव' कार्य करते हैं। कम्प्यूटर नेट वर्किंग, टी.वी. मोबाइल, नेट–वर्किंग सब अन्तरिक्ष में स्थापित सैटलाइट के माध्यम से सुपर कम्प्यूटर की तरह कार्य कर के है। उसी प्रकार अन्तरिक्ष के सातवें सत्यलोक में प्रकृति माता का सैटलाइट कार्य कर रहा है, जिसके अन्तर्गत चित्रगुप्त नामक देव, यमपुरी में बैठे प्राकृतिक सुपर कम्प्यूटर पर, हर प्राणी के चित्रगुप्त से अन्तः मन में रेखांकित कर्म रेखाओं का विवरण इकट्ठा करते रहते हैं। अतः हमारी आत्मा (सूक्ष्मशरीर) उसी प्राकृतिक सैटेलाइट के माध्यम से हर पल प्रभावित रहा करती है तथा कभी–कभी हमें विचित्र अनुभव होते हैं क्योंकि हमारे पूर्वजन्मों का डाटा, प्रकृति के सुपर कम्प्यूटर में इकट्ठे रहा करते हैं। योग ध्यान इसी के माध्यम से होता है। शेष क्रमशः।।

ooo

कामधेनु की स्तुति

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम्।
त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे।
शशिसूर्यारुणा यस्या ललाटे वृषभध्वजः।
सरस्वती च हुंकारे सर्वे नागाश्च कम्बले।
क्षुरपृष्ठे च गन्धर्वा वेदाश्चत्वार एव च।
मुखाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च।

(स्कन्द., ब्रह्म., धर्मारण्य, 10/18–20)

'हे निष्पापे! तुम सब देवताओं की माता, यज्ञ की कारण रूपा और सम्पूर्ण तीर्थों की रूपा हो। हम तुम्हें सदा नमस्कार करते हैं। तुम्हारे ललाट में चन्द्रमा, सूर्य, अरुण और वृषभध्वज शंकर हैं, हुंकार में सरस्वती, गलकम्बल में नागगण, खुरों में गन्धर्व और चारों वेद तथा मुखाग्र में चर एवं अचर सम्पूर्ण तीर्थ विराजमान हैं।'

चलो प्रेम-दीपों से घर जगमगाऐं

राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

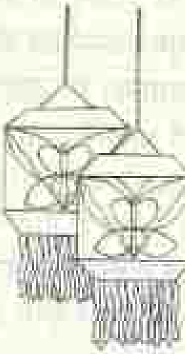

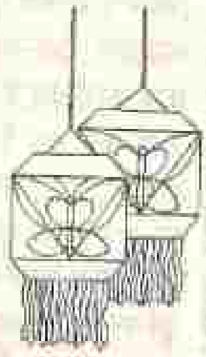

मैं रहता जहाँ पर बड़ी नींद आती।
न झाड़ू-बुहारी न दीपक न बाती।।
गुरुमन्त्र झाड़ू बड़ी मन को भायी।
सुबह-शाम नियमित थी घर में लगायी।
श्रद्धा यही नित्य कह कर जगाती।
न झाड़ू-बुहारी न दीपक न बाती।।
चुपके से अभिमान घुस घर में आया।
तभी मेरी श्रद्धा में विक्षेप आया।।
क्लेशों की अग्नि पुनः यह बताती।
न झाड़ू-बुहारी न दीपक न बाती।।
हुये काम क्रोधादि जब मेरे साथी।
भगा डाले सद्गुण मलिनता बसा दी।
'गुरुदेव' वचनों की तब याद आती।
न झाड़ू-बुहारी न दीपक न बाती।।
गुरुदेव ने योग दीपक जलाया।
इसके उजाले में चलना सिखाया।।
गुरुज्ञान-ज्योति मुझे अति लजाती।
न झाड़ू-बुहारी न दीपक न बाती।।
चलो प्रेम-दीपों से घर जगमगाऐं।
घृणा-द्वेष के मल सदा को मिटाऐं।।
'दीपावली' बस यही गुण सिखाती।
न झाड़ू-बुहारी न दीपक न बाती।।
चिन्तन 'प्रभु' का तभी होगा स्थिर।
न घर फिर रहे घर बने 'राम-मन्दिर'।
न फिर भावना ही कभी ऐसी आती।
न झाड़ू-बुहारी न दीपक न बाती।।
'दीपावली' प्रभु का दर्शन कराती।
'ज्योतित' प्रकाशित कर झाड़ू- छुड़ाती।।
मैं रहता जहाँ पर बड़ी नींद आती।
न झाड़ू-बुहारी न दीपक न बाती।।

गौ सेवा

अंशुमान देव मालवीय (वाराणसी)

संस्कार का प्रभाव मनुष्य जीवन पर काफी हद तक पड़ता है संस्कार के ही प्रभाव से मनुष्य अच्छा या बुरा बनता है। मनुष्य अपने अच्छे संस्कार के प्रभाव से ही आगे बढ़ता है। विश्व में हमारी भारतीय संस्कृति विख्यात है उसका मुख्य कारण यह भी है कि हमारे देश में बहुत सी महान विभूतियों ने जन्म लिया है और इन महान लोगों ने अपने संस्कार को विशेष ध्यान देकर अपने–अपने कार्य को किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि हम विश्व विख्यात हुए परंतु आज के इस घोर कलियुग में जहाँ मनुष्य भौतिकवाद में इतना लिप्त हो गया है कि उसे अपनी भारतीय संस्कृति व पद्धति के विषय में जरा भी ज्ञान व सम्मान नहीं है। उसके पीछे मूल कारण उसका स्वयं का अज्ञान है। वह शास्त्र में लिखी बातों को नजरअंदाज कर रहा है। उसे तो यह भी नहीं पता कि जीवन जीने का लक्षण क्या है? हम अपने इस जीव को सर्वश्रेष्ठ कैसे बनायें–इस बात पर विचार भी नहीं कर रहा है, जिसका दुष्परिणाम व प्रभाव उसे भोगना पड़ता है। मनु महाराज ने जीवन के दस लक्षण बताये हैं–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीविद्या सत्यमक्रोधो दशम् धर्म लक्षणम्॥

1. धैर्य, 2. क्षमा, 3. दम, 4. अस्तेय, 5. पवित्रता, 6. इन्द्रियों को वश में रखना, 7. बुद्धि, 8. विद्या, 9. सत्य, 10. अक्रोध

अगर हम इन दसों लक्षणों को ध्यान में रखकर अपने जीवन को जीयें तो हमारा भी जीवन महान बन सकता है और हम अपना यह जीवन समाज के सम्मुख आदर्श बना सकते हैं। हमारा लक्षण शुद्ध कर्म, शुद्ध भाषा, शुद्ध विचार तथा शुद्ध आचरण में परिवर्तित हो जायेगा और हम परोपकार का मार्ग चुनकर दूसरों के हितों के लिए ही कार्य करने को ही हम अपना निज धर्म समझेंगे। परोपकार की भावना आज लोगों में खत्म सी हो गई है।

आज इस घोर कलियुग में जहां भौतिकता में अधिकांश मनुष्य संस्कार विहीन हो गया है उसके कारण वह माँ–बाप, गुरु व गाय की सेवा तक भूल गया है। हमारी भारतीय संस्कृति ने गाय को माता स्वरूप समझा है। गाय माता की प्रत्येक चीज मनुष्य के लिए उपयोगी है। दूध से लेकर गाय माता का गोबर (मल–मूत्र) तक हमारे दवा के काम में आता है। गाय के उपले बनते हैं। उपले को ईधन के कार्य में लिया जाता है। इतना लाभ होने के बावजूद आज इस कलियुग में मनुष्य द्वारा गाय को एक पशु के समान ही देखा जाता है। इसके पीछे मूल कारण उसका स्वयं की नकारात्मक सोच है। हमें अपनी भारतीय संस्कृति को विचार में रखकर गाय माता की सेवा को ही साकारात्मक व सृजनात्मक बनाना होगा।

जिससे हमारी आगे आने वाली पीढ़ी गाय माता को सम्मान दें।

आज भारतीय संस्कृति से जुड़े व जन्मे नीम व गाय से निकले चीजों व दवाओं का पेटेंट विदेशी करा रहे हैं। दुःख तो इस बात का है कि हम इन सभी चीज को विरासत में मिली होने के बावजूद इसकी कदर नहीं कर रहे हैं; परंतु भारतीय वस्तु का उपयोग कर विदेशी अभिभूत हो रहे हैं।

हमारे देश में ऐसे अधिकांश मनुष्य हैं जो गाय माता को आदर भाव से देखते हैं व गाय माता की सेवा करने की इच्छा मन में तो रखते हैं, परंतु साधन सम्पन्न न होने के कारण उनकी यह इच्छा अधूरी रह जाती है। परंतु हम अपने मन में पल रहे विचार को पूरा कर सकते हैं। इसके लिए जरूरी है कि हम अपने शारीरिक, मानसिक रूप द्वारा अपने आस-पास पढ़ी चीजों पर यह नजर रखें की कोई गाय माता अभिष्ट, पॉलीथिन और गन्दे पदार्थ न खाये और वाणी द्वारा जन जागरूकता फैलायें। हो सके तो अपनी सामर्थ्य भर एक समय गाय माता के आहार का प्रबन्ध करें।

अक्सर यह देखा जाता है कि लावारिस घूम रही गाय माता को चोट लग जाने व जल जाने पर कोई उसकी सहायता नही करता। ऐसे में हमारा धर्म बनता है कि हम उसे सरकारी पशु चिकित्सक को इस बात की जानकारी दें या फिर उसकी दवा का व उचित सहायता का प्रबन्ध करें। हो सके तो यह प्रयास भी करें की अपने घर के पास सड़क किनारे व पार्क में पड़े खाली स्थान पर पौधारोपण करें जिससे सभी को छाया व मानव जीवन को शुद्ध वातावरण मिल सके।

आइये हम संकल्प करें की गाय माता की सेवा करेंगे और अपने इस जीवन को सद्गुरु देव भगवान की चरणों में समर्पित कर चरण-रज से इस जीवन को दिव्य बनायेगें।

OOO

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।।

सदाचार की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए; धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जाने पर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता, किंतु जो सदाचार से भ्रष्ट हो जाता गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिए।

राम की कहानी सार्वभौमिक या सर्वव्यापी चित्त आकर्षित करती है

दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर, अलीगढ़

राम की कहानी प्रत्येक का चित्त आकर्षित करती है। एक रूप में या दूसरे रूप में 'रामायण' हजारों व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है या सुनी जाती है। श्री बाल्मीक, योग वशिष्ठ हमें बताती है कि यह प्रथम राम की कहानी का वर्णन करती है। मौखिक परंपरा से कई संस्करण उत्पन्न हुए।

रामायण अद्वैत दर्शन शास्त्र के आदर्श और अव्यक्त सिद्धान्तों, नैतिक मूल्यों कर्तव्य और आदर्शों को व्यक्ति में, समाज में, राजनैतिक जीवन में प्रकाशित करती है। राम की कहानी का वर्णन करने का ध्येय ऋषि वशिष्ठ के अनुसार, एक व्यक्ति को प्रसन्न करना है और उसे पढ़ाना है कि वह बिना लगाव और बिना शंका के जीवित रहे। यह रास्ता दिखाती है कि मुक्त जीवन जियें और ध्यान की शक्ति बढ़ाए। यह इस प्रश्न से उदासीन है कि राम वास्तव में थे या नहीं। विवेकानन्द के अनुसार यह एक ऐतिहासिक है, व यह आवश्यक नहीं है कि राम जैसे व्यक्ति का कोई अस्तित्व था। प्रतिष्ठा में प्रतिपादित की गई है इस बात की सत्यता नहीं मिलती कि राम जैसा कोई व्यक्ति था। इसलिए एक व्यक्ति मान सकता है कि राम कभी नहीं रहे।

बाल्मीकी रामायण आदि रामायण के नाम से जानी जाती है जैसा कि यह मूल संस्करण है– जिसके तीन मूल ग्रन्थ है तीनों का एक–तिहाई भाग एक दूसरे से विषय सूची में भिन्न है। मुम्बई मूल ग्रन्थ उत्तरी और पश्चिम भारत में लोकप्रिय है, बंगाल मूल ग्रन्थ भारत के पूर्वी भाग में, कश्मीरी मूल ग्रन्थ उत्तरी पश्चिमी भारत में प्रथम और अन्तिम खण्ड में राम को केवल राजकुमार के रूप में चित्रित किया है जो उच्च नैतिक मूल्यों को अभ्यास कर रहे हैं जो युद्ध में निपुण हैं। इसलिए क्या राम अवतार थे? कोई नहीं जानता है।

राम की कहानी भारत की हर भाषाओं में वर्णित की गई है। सम्पूर्ण दक्षिणी पूर्वी एशिया में रामायण का विभिन्न भाषाओं, मुहाविरों और संस्कृतियों में विकास हुआ है। इस प्रक्रिया में विभिन्न क्षेत्रों का रंग आ गया है। थाइलैन्ड में यह 'रामकीन' कही जाती है और राम को स्थाई राजकुमार के रूप में चित्रित किया गया है जो पिछले जन्म में एक बौद्ध वादी थे और रावण को 'तोसक नाथ' कहा गया है और पूर्णरूप से दुष्ट नहीं है। थाई राजाओं भारतीयों के राजनैतिक और धार्मिक आदर्शों को अपनाया क्योंकि वे अपनी वंश परंपरा हिन्दू देवताओं में देखना चाहते थे और अपनी पैदाइश को दैवीय मानते थे।

हर रामायण में कुछ न कुछ भिन्नता वर्णित की गई है। तुलसी दास की 'रामचरित

'मानस' में सीताजी की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया गया है लेकिन यह राम और सीता के जीवन की कुछ मार्मिक क्षणों का वर्णन करती है। हनुमान के सीता की खोज में जाने से पहले राम हनुमान को बताते हैं– कि जब सीता राम के पैरों की मालिश कर रही थी तो सीता ने अपनी पत्थर जडित अंगूठी उतार कर फेंक दी थी क्योंकि अहिल्या की तरह वह सुन्दर औरत में न बदल जाये। सीता ने अपना भय व्यक्त किया कि राम का ध्यान विकर्षित या व्यग्र हो जाये।

गौतम तिय गति सुरति करि, नहिंपरसत पत्र पानि।
मन विहसे रघुवंसमनि प्रीति अलौकिक जनि।।

(बालकांड दोहा नं. 265)

अर्थात गौतम की स्त्री अहिल्या की गति का स्मरण करके सीता जी श्री रामजी के चरणों को हाथों से स्पर्श नहीं कर रही है। सीताजी की अलौकिक प्रीति जानकर रघुकुल मणि श्री रामचन्द्र जी मन में हँसे।

रामायण के कुछ ऐसे संस्करण हैं जिन में कथानक में मुख्य कहानी में परिवर्तन किया गया है-बौद्धों की दशरथ जातक में सीता को राम की पत्नि नहीं दिखाया गया है। अद्भुत रामायण में सीता उस की बहन है। सीता रावण और मंदोदरी की खोई हुई बच्ची है। इस संस्करण के आधार पर जनक जी ने खेत में हल जोतते समय अचानक ही पाया था। इस रामायण के अनुसार वह सीता थी जिसने रावण को मारा था। आनंद रामायण और मूल रामायण में हनुमान जी की प्रशंसा की गई है। इसी प्रकार से कंबन थी तमिल रामायण, 'द्विपद' तेलगू रामायण में, मलियालम में 'रामचरितम' कन्नड़ की 'टौर्वे' रामायण में, 'माधवकाली' आसामी रामायण में, 'कृतिवाला' बंगला की रामायण में, उड़िया की बलिदास रामायण में, मराठी की 'भावार्थ' रामायण में—सभी में विशिष्ट गुण हैं।

राम–मर्यादा पुरुष के रूप में, आदर्श व्यक्ति के रूप में या विष्णु के अवतार के रूप में एक महान रूप में हैं जिनकी लोक प्रियता सीमाओं और संस्कृतियों से उन पर उठ जाती है।

OOO

हीरों की खान को छोड़कर काँच की मणियों के पीछे मत दौड़ो। यह जीवन एक अमूल्य अवसर है। क्या, तुम सांसारिक सुखों की खोज कर रहे हो? –प्रभु ही समस्त सुख के स्रोत हैं। उन्हीं उच्चतम को खोजो, उन्हीं को अपना लक्ष्य बनाओ और तुम अवश्य उन्हें प्राप्त करोगे।

श्री मद्भागवत् माहात्म्य

राजेश कुमार श्रीवास्तव

कलयुग में श्रीमद्भागवत के महात्म्य की कथा भगवान के प्रति प्रेमपूर्ण अनन्य भक्ति के महत्व पर आध्यात्मिक जन–समुदाय का ध्यान आकर्षित करती है। कलयुग अधर्म का विस्तार करने वाला तथा मानव के चित्त को विषयासक्त बना देने वाला होता है। श्रीमद्भागवत पुराण कलयुग के कुप्रभाव से भगवान के भक्तों की रक्षा करता है तथा आत्मिक उन्नति में सहयोग प्रदान करता है। यही कारण है कि कलिकाल में भगवान के भक्तों में इसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती है। कलिकाल के दौरान मनुष्य की मन सहित समस्त इन्द्रियाँ इतनी चंचल हो जाती हैं कि उसके चित्त में भक्ति, ज्ञान–वैराग्य के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता। इसकी स्पष्ट झलक वर्तमान युग में स्पष्ट देखी जा सकती है। मनुष्य ने घर के अन्दर व घर के बाहर इन्द्रियों को चंचल करने वाली इतनी वस्तुऐं जुटा दी हैं कि मन बुद्धि को परमात्म चिन्तन के लिए सुरक्षित रख पाना सम्भव नहीं।

श्रीमद्भागवत के महात्म्य की कथा के अन्तर्गत नारद जी व उद्धव जी के रुप में दो महत्वपूर्ण चरित्र प्रकाश में आते हैं। दोनों महात्मा भिन्न–2 स्थान व परिस्थिति में कलयुग द्वारा आध्यात्मिकता के पतन को लेकर अत्यन्त दुःखी व चिंतित दिखलाई पड़ते हैं। दोनों महात्माओं का पुरुषार्थ मानव हित में वन्दनीय है। यह भक्ति, ज्ञान–वैराग्य को देने वाला ग्रन्थ है। कलयुग इनको नष्ट करने वाला क्रूर वातावरण है। श्रीमद्भागवत की शरण लेने पर भक्तों के हृदय में भक्ति, ज्ञान–वैराग्य सुरक्षित बने रहते हैं।

जिन लोगों में स्वभाव से ही भगवान की प्रेमपूर्ण भक्ति नहीं होती वे अज्ञानी लोग माया के अधीन रहते हैं। माया उनके ज्ञान को हर लेती है। अज्ञान व आलस्य तमोगुण से उत्पन्न होते हैं। वे कौन लोग हैं जो भगवान की भक्ति नहीं करते। उनके विषय में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ा प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः।।

"माया के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है ऐसे आसुर स्वभाव को धारण किये हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूढ़ लोग मुझको नहीं भजते।"

विषयोपभोग के आदी, आलस्य को धारण किये आसुर स्वभाव वाले अज्ञानी, नीच व दूषित कर्मों से अपनी विषयवासना शान्त करते हैं। जैसे–2 विषयासक्ति बढ़ती है जीवन को सुन्दर बनाने वाले नियम, धर्म को सुरक्षित रखने वाले अनुशासन विषयभोगियों द्वारा तोड़ दिये जाते हैं। समाज में अधर्म का विस्तार होता चला जाता है। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए

आसुरी वृत्ति के अज्ञानियों द्वारा किये जाने वाले नीच व दूषित कर्मों से सामाजिक वातावरण में रहने वाले सभी लोगों के मन–बुद्धि दूषित हो जाते हैं। यही कलयुग का स्वरूप होता है। मन–बुद्धि दूषित होने से आध्यात्मिकता नष्ट हो जाती है। लोगों के मन से भक्ति, ज्ञान–वैराग्य तुरन्त निकल जाते हैं। कलयुग के ऐसे दूषित वातावरण में कोई भगवान का भक्त चाह कर भी अपने आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त नहीं कर सकता। कारण उक्त वातावरण भक्तिहीन दुराचारी, मूढ़ों व नराधमों के दूषित भव–कर्मों से उत्पन्न होने भक्ति विरोधी होता है। भक्ति के उत्थान पर निर्भर ज्ञान–वैराग्य शीघ्र ही भक्तों के हृदय से भक्ति के साथ ही विलुप्त हो जाते हैं। कलयुग के नियंत्रक ज्ञान–वैराग्य का अभाव हो जाने से कलयुग तीव्र वेग से समस्त संसार के मनुष्यों के मन–बुद्धि को अपने दूषित प्रभाव में ले लेता है।

भगवान के परम भक्त नारद जी पहले ब्रह्माजी के श्रीमुख से श्रीमद्‌भागवत की कथा अर्थात् भगवान के लीला चरित्रों को सुन चुके थे। कथा के प्रभाव से ज्ञान–वैराग्य की ऊँचाई पाकर वे परमात्म चिंतन में मग्न सर्वत्र विचरण करते थे। कर्मभूमि होने से नरभूमि को सभी लोकों में श्रेष्ठ जानकर वे नर लोक में भ्रमण करने आये। भगवान के सदा प्रिय ज्ञानी भक्तों का सत्संग प्राप्त करने की इच्छा से वे नरलोक के तीर्थों का दर्शन करने निकले। किंतु उस दौरान नरलोक में कलयुग का प्रभाव सभी दिशाओं में तीव्र गति से बढ़ रहा था। नारद जी तीर्थों में मन–बुद्धि को अन्ततः दूषित करने वाला वातावरण देखकर हैरान रह गये। तीर्थों में स्थित मन्दिरों, आश्रमों व मठों की स्थिति पवित्रता की दृष्टि से और भी अधिक दयनीय थी। मन्दिरों में उन्होंने सकाम भक्तों की बेशुमार भीड़ देखी जो नाना प्रकार से भगवान की पूजा–अर्चना कर रहे थे। उनमें भगवान के प्रति श्रद्धा तो थी किंतु विनयता, सभ्यता, धैर्य, मर्यादा, सन्तोष, पवित्रता आदि सद्‌गुणों बिल्कुल नहीं थे। उनकी ज्ञान सम्बन्धी (योगसम्बन्धी) प्रवचन सुनने में कोई रूचि नहीं थी। भारत के आश्रम–मठ जो कभी सारे संसार को धर्मपालन, सदाचार, भक्ति व आत्मज्ञान की शिक्षा देने वाले होते थे अब केवल भौतिक ऐश्वर्य की कमाई के साधन बन कर रह गये थे। ऐसे अधिकांश स्थानों पर 'वैयक्तिक प्रधानत्व' प्राप्त करने की अभिलाषा से नित्य दलबन्दी के संघर्ष बने रहने से वहाँ के निवासियों, सेवकों–साधकों, व्यवस्थापकों के मन–बुद्धि, घृणा, द्वेष, तिरस्कार, भय, शोषण, ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा आदि चित्त की मलिनताओं से दूषित हो रहे थे। इन स्थानों पर शान्ति की इच्छा से आने वाले वहाँ के दूषित वातावरण से अशान्त होकर कुछ ही दिनों में लौट जाते थे। पवित्र तीर्थों पर ऐसा कलुषित अनाचार देख कर नारद जी को बड़ी अशान्ति हुई। कलयुग की कुदृष्टि नारद जी पर पड़ चुकी थी। चित्त को पवित्र वातावरण न मिलने से उनकी एकाग्रता प्रभावित होने लगी। उनके भक्ति, ज्ञान–वैराग्य क्षीण होने लगे। वे अपना हित विचार कर वहाँ से तुरन्त चल दिये। फिर वही पूर्ववत आशा के साथ अन्य तीर्थों में गये। इसी

कारण से योगोपदेष्टा आचार्य अपने उन शिष्यों को सांसारिक लोगों (दूषित मन-बुद्धि वाले) से सम्पर्क रखने से रोक देते हैं जो मन की एकाग्रता की अच्छी स्थिति प्राप्त कर रहे होते हैं अथवा विवेक ख्याति व ऋतम्भरा प्रज्ञा की ओर बढ़ रहे होते हैं। जब तक वे अपनी शक्ति के स्वयं रक्षक नहीं बन जाते तब तक उन्हें अपने साथ ही रखते हैं अथवा नितान्त एकान्त में कहीं योगाभ्यास में लगे रहने की आज्ञा दे देते हैं। कभी-कभी असभ्य लोगों के दुर्व्यवहार से मन में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। क्षोभ-शौक मन की एकाग्रता वालों के लिए अच्छा नहीं होता। जब तक क्षोभ शान्त नहीं हो जाता तब तक क्षोभ देने वाले के प्रति मन में चिन्तन बना ही रहता है। बुद्धि जो पवित्र चिंतन में निमग्न थी अचानक जब क्षोभ पूर्वक दूसरों के दूषित चित्त का चिन्तन करने लगती है तो मन की एकाग्रता तुरन्त क्षीण होने लगती है। आत्मिक शक्ति का ह्रास होता है। कभी-कभी ये घटनाएँ इतने प्रबल वेग से घटित होती हैं कि उच्च मानसिक योग्यता वाले मानसिक-शारीरिक रोग से पीड़ित भी हो जाते हैं।

अन्य तीर्थों में भी नारद जी वही दूषित वातावरण पाकर बड़े दुःखी हुए। शान्ति की खोज करते हुए वे पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग और सेतुबन्ध आदि अनेक तीर्थों में भ्रमण करते रहे, किंतु कहीं उन्हें मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हुई। इतने दिनों तक दूषित वातावरण में घूमते रहने से उनके भक्ति ज्ञान-वैराग्य ऐसे विलुप्त हो गये जैसे कहीं दूर जा कर सो गये हों। नारद जी का मन गहरे क्षोभ में, शौक में डूब गया। अपने प्यारे कन्हैया की याद आ गई। वे योगेश्वर श्री कृष्ण की लीला स्थली श्री वृन्दावन धाम आ गये। जहाँ भक्ति स्थान-स्थान पर नृत्य करती है। वृन्दावन में नारद जी को भक्ति, ज्ञान-वैराग्य प्राप्त हो गये। उनकी भक्ति तो कुछ ही दिनों में तरुण हो गई, किंतु ज्ञान-वैराग्य की चेतना नहीं लौटी।

एक दिन यमुना किनारे उदास बैठे नारद जी ज्ञान-वैराग्य का चिन्तन कर रहे थे। सोच रहे थे- दुनियाँ भर के भगवान के जिज्ञासु भक्त यहाँ ज्ञान-वैराग्य की इच्छा से यहाँ चले आये हैं। क्योंकि संसार मन की एकाग्रता के योग्य नहीं रहा। यहाँ भगवान की भक्ति करते हुए ही भक्तों के प्राण निकले यह भी अच्छा है वे कलयुग के द्वारा मिलने वाले मृत्यु तुल्य कष्ट से तो बच ही जायेंगे, किंतु सतयुग में ज्ञान-वैराग्य की साधना के लिए उन्हें पुनः जन्म लेना पड़ेगा, क्योंकि बिना ज्ञान-वैराग्य के अर्थात् परमात्व ज्ञान से परमात्मा को प्राप्त किये बिना कोई संसार सागर (भव बन्धन) से मुक्त नहीं होता। क्योंकि जब तक मनुष्य के शुभाशुभ संस्कार समूल नष्ट नहीं हो जाते तब तक मनुष्य को जन्म लेने ही पड़ते हैं अर्थात् मुक्ति हेतु निर्बीज समाधि तक पहुँचना प्रत्येक नर का परम कर्तव्य है। नरलोक जो मनुष्य के कल्याण का लोक है उसमें ही मनुष्य के कल्याण के साधन भक्ति, ज्ञान-वैराग्य को असुरक्षित व तिरस्कारित देख कर नारद जी का मन मानव जाति के प्रतिदया की भावना से भर गया। मानव कल्याणार्थ उनके मन में उपकार की भावनाएँ उमड़ने लगीं। वे भगवान के भक्तों को

कलयुग के प्रभाव से बचाने का उपाय सोचने लगे ताकि वे अपने कल्याण मार्ग पर प्रसन्नचित्त मन से आगे बढ़ सकें। इन्हीं विचारों में वे डूबे हुए थे कि अचानक यमुना तट पर उन्होंने एक सुन्दर युवती को देखा उसकी बगल में दो वृद्ध युवकों को जीर्ण-शीर्ण हालत में देखा। वह युवती उन दोनों पुरुषों को देखकर विलाप कर रही थी। नारद जी ने उसके निकट जाकर उसके विलाप का कारण पूछा। उस युवती ने अपना परिचय देते हुए कहा-

हे महात्मन! मैं भक्तों के हृदय में निवास करने वाली भक्ति हूँ। मेरे साथ ये दोनों पुरुष ज्ञान-वैराग्य हैं और मेरे साथ में जो स्त्रियाँ हैं ये गंगा आदि नदियाँ हैं जो मेरी सेवा में है। मैं द्रविड़, कर्नाटक आदि अनेक देशों में भटकती हुई जब गुर्जर देश में आयी तो अत्यन्त जीर्ण हो गई। दयाहीन गुर्जरों ने मुझे बहुत अपमानित किया। वहाँ के पाखण्डियों ने मेरा अंगभंग कर दिया। तभी से मैं दुर्बल होती चली गई। यहाँ वृन्दावन में आकर मैं तो तरूण हो गई, किंतु मेरे पुत्रों का बुढ़ापा दूर नहीं हुआ न इनकी चेतना लौटी।

हे महात्मन! आप योगिराज हैं इसका क्या कारण है। बताने की कृपा करें।

नारद जी ने कहा-

हे भद्रे! इसका कारण केवल मात्र कलयुग है। इसके प्रभाव में तमोगुण प्रधान आसुरी वृत्ति वाले पापी, छली, कुकर्मी लोगों की संख्या बहुत अधिक हो जाने से इनका बल बढ़ जाता है। अनुत्तम कर्म करने वाले अनेक प्रकार से भगवान के भक्तों को दुःख देते हैं। शोकाकुल चित्त में भगवान का भजन नहीं बनता, बल्कि इन दुष्टों का ही चिन्तन होता है। इसीलिए तुम्हारी यह दशा हुई है। कलयुग में इन्द्रियां बहुत चंचल हो जाती हैं। इन्द्रिय संयम कठिन हो जाता है। फिर 'ज्ञान' कैसे सम्भव हो? वृन्दावन में भक्ति का सम्मान तो है किंतु ज्ञान-वैराग्य को आदर देने वाला यहाँ भी कोई नहीं है। जब तुम ज्ञान-वैराग्य को आदर देने वाले भक्तों के हृदय में निवास करोगी तभी तुम्हारे पुत्रों की वृद्धावस्था दूर होगी।

भक्ति ने पुनः प्रार्थना की-

हे महात्मन्! आप मेरे भक्तों को जगाने की कृपा करें। इनके बिना मुझे सुख नहीं हो सकता। मुझ पर दया करें।

नारद जी ने उत्तर दिया-

हे भगवान की प्राणप्रिय भक्ति! तुम भगवान को अतिशय प्रिय हो। तुम सदा भक्तों के हृदय में निवास करती हो। तुम्हारे इसी गुण को देख कर भगवान ने तुम्हें अपने बैकुण्ठ धाम से पृथ्वी लोक में जाने की आज्ञा दी ताकि वहाँ भगवान के भक्तों का कल्याण सम्भव हो सके। जब तुम भगवान की आज्ञा मांगकर चलने लगी तो भगवान ने प्रसन्न हो कर ज्ञान-वैराग्य और मुक्ति को भी तुम्हारे साथ कर दिया। जिसके हृदय में तुम बनी रहती हो उसके हृदय में ज्ञान-वैराग्य स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसी कारण तो ज्ञान-वैराग्य तुम्हारे पुत्र कहे जाते हैं।

भक्ति से ही मुक्ति सम्भव है। मैं समस्त तीर्थों में घूम कर पहले ही देख चुका हूँ कलिकाल में ज्ञान–वैराग्य की साधना के योग्य न तो वातावरण है और न लोगों में पात्रता। तुम व्यर्थ ही ज्ञान–वैराग्य के लिए चिंतित हो रही हो।

नारद जी की बातों से भक्ति को संतोष नहीं हुआ। जब एक संसारी माँ अपने बच्चों का कष्ट नही देख सकती तब भक्ति कैसे अपने बच्चों का कष्ट बर्दाश्त करे। एक माँ अपने प्रसन्नचित्त परिवार में ही प्रसन्न रहती है।

भक्ति का हठ देख कर नारद जी ने ज्ञान –वैराग्य को जगाने का प्रयास किया। उनके कान में जोर–जोर से आवाजें दी किंतु वे नहीं जग सके। तब नारदजी ने अपने गुरु गोविन्द जी का ध्यान किया। आकाशवाणी हुई। ''तुम पुण्य कार्य करो तुम्हारा उद्योग सफल होगा। कौन सा पुण्य कार्य करना है यह साधु–महात्मा बतायेगें।''

कथा को आगे बढ़ाने से पहले भक्ति, ज्ञान–वैराग्य के विषय में जान लेना अधिक अच्छा होगा। ज्ञान–वैराग्य की साधना करने से पहले साधक में भक्ति का होना अति आवश्यक है। अब तक हमने कलयुग का वातावरण बनाने वाले, दुष्कर्म करने वाले भगवान के अभक्तों के विषय मे जाना जो तमोगुण प्रधान होते हैं। अब उत्तम कर्म करने वाले भगवान के भक्तों के विषय में भी जान लें ताकि ज्ञान–वैराग्य को आदर देने वाले भगवान के कौन से भक्त होते हैं यह स्पष्ट हो सके।

योगेश्वर श्रीकृष्ण गीता में अपने चार प्रकार के भक्तों के विषय में बतलाते हैं जो शुभ कर्म करने वाले होते हैं। भगवान का भजन (स्मरण) करने वाले होते हैं।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।

क्रमशः

ब्रह्माविष्णुमहेशादिदेवर्षिपितृकिन्नराः ।
सिद्धचारणयक्षाश्च ह्यन्येऽपि मुनयोजनाः।।

ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवता, ऋषि, **पितृ**, **किन्नर**, **सिद्ध**, **चारण**, **यक्ष** और अन्य मुनि लोग भी गुरु की **सेवा करते हैं।**

सद्गुरु भगवान का 99वाँ जन्मोत्सव धूम धाम से सम्पन्न हुआ।

9 अक्टूबर को विजय दशहरा के पावन पर्व पर गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का प्राकट्य दिवस गुरुदेव के सभी आश्रमों व केन्द में धूम धाम से मनाया गया। इस उपलक्ष्य में श्री सिद्ध गुफा सवाई के श्रीमद्भागवत का कार्यक्रम 2 अक्टूबर से रखा गया। करौली निवासी कथा व्यास श्री पुरुषोत्तम शरण ने अपने मधुर व सरस संगीत के साथ कथा सुनाकर श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया। अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय की ध्वनि संकीर्तन के मध्य कथा का रसास्वादन किया गया।

अपने दिल्ली आश्रम में भी श्री मद्भागवत् सप्ताह का आयोजन रखा गया। गुरुदेव की जन्मभूमि अलुपुर में भी तीन दिन तक अपार जन समूह के साथ कार्यक्रम का आनन्द सभी गुरुभक्तों ने लिया। इस प्रकार से गुरुदेव भगवान का 99वाँ जन्म–उत्सव सभी आश्रमों में बड़े हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाया गया।

शोक संवेदना

महुआ खेड़ा (एटा) निवासी स्व. श्री राजकुमार सिंह के बड़े सुपुत्र श्री राजेश कुमार सिंह का 6 अक्टूबर को निधन हो गया। यह परिवार एक गुरुभक्त परिवार है। गुरुदेव के पुराने दीक्षित बच्चे रहे हैं। राजेश कुमार सिंह के देहवसान के इस दुःखद अवसर पर सिद्धयोग परिवार व श्री सिद्ध गुफा के आश्रमवासी अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करते हैं। श्री प्रभु जी बिछुड़े आत्मा को सद्गति व शान्ति दें।

–सम्पादक

जीवन का सनातन प्रश्न

प्राय: सभी मनुष्यों के जीवन में किसी न किसी समय ये प्रश्न आये बिना नहीं रहते कि "मैं कहाँ से आया हूँ?" और 'कहाँ जाऊँगा?' –'**कोऽहं कुत आयात:।**' बात स्पष्ट है कि अनभिज्ञ लोग या अल्पज्ञलोग इन प्रश्नों को टालने का प्रयत्न करते हैं। अधिकांश विद्वान लोग विचार करके थक जाते हैं और उत्तर शायद ही पाते हैं। ये प्रश्न सनातन हैं और खोज भी पुरातन ही है। जगत्सृष्टि के समय से यह खोज सभी देशों में और सभी मतों तथा सभी दर्शनों में की जा रही है। विभिन्न मतवाले लोग परलोक तथा पुनर्जन्म के सम्बन्ध में अपने–अपने विचार भी प्रदर्शित करते रहे हैं। इन सब विचारों पर परामर्श किये बिना अपने–अपने आध्यात्मिक सिद्धान्त का स्थापित करना असम्भव नहीं तो, कठिन अवश्य है।

कठोपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता का बीज–प्रश्न भी यही है। अन्यान्य उपनिषदों में, पुराणों में और दर्शन ग्रन्थों में भी इस विषय पर बड़ी चर्चा आयी है। वह ठीक ही है, क्योंकि पुनर्जन्म परलोक सम्बन्धी चर्चा के बिना अध्यात्म विचार हो ही नहीं सकता। कठोपनिषद् में–

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये–
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
तद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीय:।।

(1/1/20)

यह जो प्रश्न अधिकारी शिष्य नचिकेता ने गुरु ब्रह्म विद्याचार्य वैवस्वत यम से किया, वह प्रश्न सनातन ही है। गीता का द्वितयाध्याय, जो गीता का हार्द है और जिसमें अर्जुन के मुख्य प्रश्न का उत्तर आया है, वह सम्पूर्णत: कठोपनिषद् पर ही आधारित है। दोनों में '**नायं हन्ति न हन्यते**' इत्यादि कई सिद्धान्त–वाक्य समान रूप से उपलब्ध होते हैं, यह बात विद्वानों को विदित ही है।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर लोगो आवरण (स्थान बुक) का विज्ञापन
2. लेटर बॉक्सों पर स्थान का आरक्षण (मासिक)
3. [illegible] रु. 1000 प्रति पैनल [illegible] रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन [illegible] प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर [illegible] बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर [illegible] कोई [illegible] विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति [illegible] 400/-
7. [illegible] कार्ड के माध्यम से विज्ञापन [illegible] कार्ड के आगे भाग का [illegible] रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। [illegible] पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर एन आई. नं. UPHIN/2004/14506. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा